तत्वदीपः

भाषानुवादसहितः ।

ब्रह्मर्षि श्रीरामकृष्ण-प्रणीतः ।

प्रकाशक—
लल्लन ब्रह्मचारी
स्थान—थानेश्वरम्
जनपद—अयोध्या

❀ ॐ ❀
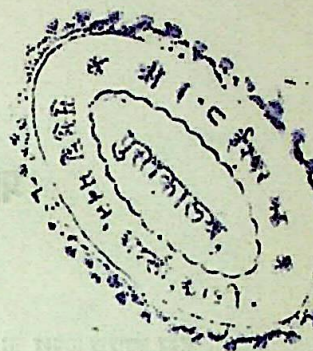
तत्वदीपः

भाषानुवादसहितः ।

ब्रह्मीभूत - योगिराज श्रीरामकृष्ण - प्रणीतः ।

रामावधि - शास्त्री-द्वारा संशोधितः ।

मुद्रक— प्रभात प्रिंटिंग काटेज, आजमगढ़ ।

द्वितीयावृत्तिः १००० (सं० २०३१

प्रारम्भिक वक्तव्य

इस अपूर्व ग्रन्थ के रचयिता ब्रह्मर्षि रामकृष्ण ब्रह्मचारी जी का जन्म संवत् १९३७ की कार्तिक कृष्णा नवमी बुधवार को आजमगढ़ जिला के अन्तर्गत मुहम्मदाबाद तहसील के समीप चौबेपुर ग्राम में एक कुलीन तथा सम्पन्न ब्राह्मण कुल में हुआ। जन्म के ६ महीने के पश्चात् ही आप को पिता का दुःखद वियोग हो गया। अयोध्या-यात्रा के समय विसूचिका रोग से उनका परलोक वास हो गया। माता के निरीक्षण में आप का पालन पोषण होने लगा।

उचित समय में आप ने खरी ग्राम निवासी सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० नागेश्वर जी महाराज के आश्रम में अध्ययन प्रारम्भ किया। अपनी कुशाग्रबुद्धि एवं अप्रतिम प्रतिभा के कारण अल्प काल में ही व्याकरण का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया। दर्शनों की ओर विशेष प्रवृत्ति होने के कारण आप ने दर्शनों का पूर्ण रीति से परिशीलन किया और उनका यथार्थ तत्व समझ कर कृतकृत्य हो गये। २३ वर्ष की अवस्था में ही आप ने सब दर्शनों का पूर्ण पाण्डित्य प्राप्त कर लिया।

ब्रह्मचर्य का विधिविहित रीति से परिपालन कर आप ने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। कुछ काल तक गार्हस्थ्य धर्म का यथावत् परिपालन कर इससे आप अलग हो गये क्यों कि आरम्भ ही से वासनारहित होने के कारण आप संसार से विरक्त थे। अपने पूर्वजों की कीर्ति स्थापना के लिए आप ने चौबेपुर में एक कृष्ण

मन्दिर बनवा दिया और वानप्रस्थाश्रम के नियम के अनुसार निज ग्राम का परित्याग कर कोठिया में भगवत् भजन करने लगे।

योगाभ्यास में आप का परम प्रेम है और इसी के अभ्यास में आप का विशेष समय व्यतीत होता है। अवशिष्ट समय में वेदान्ततत्वों का मनन और निदिध्यासन करते रहते हैं। आप से बढ़कर वेदान्त के तत्व समझने वाले बहुत थोड़े व्यक्ति मिलेंगे। महाराज इतने कृपालु एवं परोपकारपरायण हैं कि इन योगानन्द और ब्रह्मानन्द को छोड़कर भी अधिकारियों को उपदेश देने के लिए तत्पर रहते हैं। ज्ञानपिपासु भक्तजन आप के दर्शनों के लिए और उपदेशामृतपान के लिये दूर दूर से आते हैं। ज्ञानाञ्जन शलाका द्वारा अज्ञानरूपी अन्धकार से अन्ध जनों की आंखें खोल-कर परब्रह्म का स्वरूप दिखा देते हैं आप के उपदेशों से अनेकों का जीवन सुधर गया और वे परमपद को प्राप्त हो गये। आप के बिचार बड़े उदार हैं और हृदय वात्सल्यपूर्ण हैं।

इसी उदारता और वात्सल्यभाव से प्रेरित होकर भक्तों की प्रार्थना से आपने इस तत्वदीप नामक ग्रन्थ की रचना की। वेदान्त के सिद्धान्तों का समझना साधारण बात नहीं परन्तु इस पुस्तक में बड़ी सरल एवं मनोहर संस्कृत भाषा में वेदान्त के तत्वों का प्रति-पादन किया है। साधारण बुद्धि का मनुष्य भी इसकी सहायता से वेदान्त के गहन सिद्धान्तों के रहस्य को अनायास समझ सकता है। महर्षियों ने जिन विषयों के समझाने के लिये बड़े बड़े ग्रन्थ लिख डाले हैं वे ही विषय बड़ी ही युक्ति से थोड़े ही शब्दों में महात्माजी ने इस पुस्तक में समझा दिए हैं। श्रुति, स्मृति, दर्शन और धर्म शास्त्र की सभी आवश्यक बातें इसमें प्रदर्शित की गई हैं। परस्पर-विरोधी श्रुतियों का और परस्परविरोधी श्रुति-स्मृति का सामञ्जस्य

आपने वड़ी ही सुन्दर रीति से कर दिखाया है।

आप का कथन है कि कर्म के द्वारा बोध और बोध के द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है। सन्ध्या, जप, होम आदि वहिरङ्ग साधन हैं और बैराग्य अन्तरङ्ग साधन। बैराग्य विवेकादि साधनों के द्वारा तीनों प्रतिबन्धों के नष्ट हो जाने पर अज्ञान का विलय हो जाता हो जाता है और ज्ञान का उदय होता है। ज्ञानोदय होने पर जीव अपने स्वरूप को भली भांति समझने लगता है और उसके सञ्चित एवं क्रियमाण कर्म नष्ट हो जाते हैं। प्रारब्ध कर्म भी निर्वीज हो जाते हैं और संसार में आवागमन फिर नहीं होता। शरीरपात के अनन्तर ही जीवात्मा परमात्मा में लीन हो जाता है। जीवन काल में जीव प्रत्येक चर और अचर वस्तु में अपनी सत्ता देखने लगता है और इस संसार को अपना ही रूप समझने लगता है।

परन्तु इस स्वरूप के दिखाने के लिये विशुद्ध कुल में उत्पन्न साधन चतुष्टय सम्पन्न तत्वचिन्तनपरायण परमश्रद्धास्पद गुरु की आवश्यकता होती है। ऐसे गुरु के उपदेश के विना स्वरूप का देखना असम्भव है। इसी उद्देश्य से उक्त महाराज ने इस पुस्तक की रचना की और संस्कृत भाषानभिज्ञ शिष्यों के लाभ के लिये अपने प्रान्त की भाषा में इसका अनुवाद भी कर दिया। इस ग्रन्थ के द्वारा वहुत से जिज्ञासुओं को ज्ञान की प्राप्ति होगी और संसार का परम उपकार होगा।

असीघाट, काशी, } अम्बिकादत्त उपाध्याय एम्० ए०

दीपावली, सं० १९८६ } सांख्य-योग शास्त्री

प्रादुर्भाव काल सं० १९३७ } श्री रामकृष्णजी योगीराज { तिरोभाव सं० २००५

श्री हरिः

अनन्त श्री विभूषित धर्म प्राण पूज्यपाद श्री करपात्री (श्री हरिहरानन्द सरस्वती) जी महाराज का आशीर्वाद

तत्वदीप वेदान्त का ग्रन्थ है इसके रचयिता पण्डित रामकृष्ण जी महान विद्वान एवं अन्तर्मुख योगी थे। वे सदा सर्वदा नियमित रूप से एकान्त वास करते हुये वेदान्त शास्त्र के अभ्यास तथा मनन निदिध्यासन में संलग्न रहते थे। वे सनातन धर्म के महान समर्थक तथा आदर्श थे। थोड़े थोड़े समय के लिये बाहर निकलते थे। दूर दूर से हजारों की संख्या में जनता यहां उनका दर्शन करने आती थी। उनके मधुर प्रवचन तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व-दर्शन से प्रभावित होती थी। उनकी यह पुस्तक उनके अनुभव का प्रतिफल है अतः आस्तिक लोगों को उससे लाभ लेना चाहिये।

श्रा० शु० १२ सोमवार

यशपुर नरेश कोठी
शिवाला वाराणसी

❀ श्री हरिः ❀

यतो धर्मस्ततो जयः

विनम्र निवेदन :–

'तत्त्वदीप' पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। इसके रचयिता ब्रह्मीभूत योगिराज श्री रामकृष्ण जी महाराज हैं। इसका स्वाध्याय करने से यह स्पष्ट अवगत हो सकेगा कि योगिराज जी कितने उच्च कोटि के अन्तर्मुख विद्वान् एवं साधक थे। अद्वैत वेदान्त के गहन तत्त्वों को संक्षेप में सरलता के साथ प्रस्तुत कर आप ने तत्त्व-जिज्ञासुजनों का महान् उपकार किया है। ग्रन्थ की उपादेयता को दृष्टि में रखकर ही इसके पुनः प्रकाशन की व्यवस्था की गयी।

तपस्वी पूतात्मा श्री ब्र० लक्ष्मन जी (टंड़वा भरतपुर) की सत्प्रेरणा से पुनः इस ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है यह प्रसन्नता का विषय है। अधिकाधिक श्रद्धालु एवं साधकजन इस ग्रन्थ का अध्ययन और मनन कर निःश्रेयस प्राप्त करें' यही सर्वेश्वर पूर्णतम पुरुषोत्तम प्रभु के चरणों में यह तृतीय पुष्प अर्पित कर विनम्र प्रार्थना है।

रामनवमी सं० २०२६

यदुनन्दन दीक्षित
मुमुक्षु भवन
अस्सी, वाराणसी

तत्त्वदीप और शान्ति

श्री पं० यदुनन्दन दीक्षित जी ज्यौतिषाचार्य
ज्योतिषार्णव , ज्योतिषतीर्थ

हम भौतिक दृष्टि से अत्यधिक समुन्नत होते जा रहे हैं, तब भी अशान्त ही हैं। कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि भौतिक उन्नति और शान्ति का मेल बैंठ ही नहीं सकता, क्यों कि हम भौतिक दृष्टि से जितना ही समुन्नत हो रहे हैं उतना ही शान्ति हम से कोसों दूर होती जा रही है। इसीलिये हम स्वस्थ एवं प्रसन्न नहीं हैं। स्वस्थता एवं प्रसन्नता के लिए शान्ति का वरण हमें करना ही होगा शान्तिवरण के दो अचूक साधन हैं—

१—सन्तों की वाणी का हृदय में धारण

२— विषयों को विष समझकर उनका परित्याग।

"शान्तिमिच्छसि चेदापूरु सतां वागमृतं श्रुणु।
हृदये धारणाद् यस्य न पुनः खेदसम्भवः॥
शान्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषवत्त्यज।"

विषयों का विषवत् परित्याग सन्तों की अमृतस्वरूप वाणी के श्रवण से अनायास सन्भव होता है। इसीलिए यह 'तत्त्वदीप' योगिराज परम सन्त ब्रह्मीभूत श्रीरामकृष्णजी महाराज की अमृत-वाणी—ग्रन्थ-पुनः प्रकाशित किया जा रहा है।

तात्त्विक तथ्य के प्रतिपादक इस लघुकाय ग्रन्थ में अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों को हृदयङ्गम कराने का सफल प्रयास किया गया है। विषयों का परित्याग वैराग्य की प्रवणता पर निर्भर है।

वैराग्य की प्रवणता अद्वैत वेदान्त के तथ्यों का परिशीलन करने से ही सम्भव है। अतः प्रसङ्गानुसार अद्वैत वेदान्त सिद्ध किन्हीं तथ्यों का यहां संक्षिप्त एवं सरल विवरण दिया जा रहा है इसके आधार पर तत्त्वदीप के मनन में भी सुविधा होगी।

आत्मा

सत्-चित्-आनन्द स्वरूपता आत्मा का लक्षण है सर्वदा अपने स्वरूप में विद्यमान होने के कारण भूत भविष्य वर्तमान-तीनों काल में वह आत्मा बाधारहित एक रस रहता है इसीलिये वह सत्य कहा जाता है। 'मैं' यह अभिन्नज्ञान सभी काल में देखने में आता है। 'मैं नहीं' ऐसा ज्ञान कभी देखने में नहीं आता इसीलिए आत्मा नित्य है जैसे गङ्गा जी के फेन बुदबुद तरङ्गमाला में जल अनुस्यूत है वैसे ही बाल्य यौवन प्रौढ़ आदि अवस्थाओं में तथा जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति दशाओं में एवं बुद्धि की भली बुरी सभी वृत्तियों में भी आत्मा का अस्तित्व निरन्तर परिपूर्ण रहता है। साक्षी की एक रूपता नित्य बनी रहती है। जो मैं स्वप्न देख रहा था, जो मैं सुख से सोया था वही मैं अब जागता हूं- इस प्रकार निरन्तर भाव से आत्मा का अस्तित्व अनुभव में आता है अतएव आत्मा सत्य है।

आत्मा दूसरे किसी प्रकाश की ऊपेक्षा न करके अपने स्वरूप से ही प्रकाशित होता है— अतः वह स्वयं प्रकाश स्वरूप है। प्रकाशित होते हुए जिसके प्रकाश को लेकर यह सब लोक प्रकाशित होता है, वह आत्मा सभी अवस्थाओं में स्वयं प्रकाशित रहता है।

आत्मा सुख रूप होने से आनन्द स्वरूप है और परम प्रेम का आश्रय होने से सुखरूप है। स्त्री पुत्र आदि सुख के कारण पदार्थों में सब प्राणियों का ससीम प्रेम देखने में आता है, परन्तु कहीं भी किसी समय भी प्राणियों को अपने में ससीम प्रीति देखने में नहीं

आती। अपितु अपने में सभी को असीम प्रीति होती है। क्षीण इन्द्रिय वाले की तथा बृद्ध की अथवा जो मृत्यु के मुख में आ पहुँचा है उसको भी जीवित रहने की आशा बनी रहती है क्योंकि आत्मा सबसे अधिक प्रिय है अतएव आत्मा सबसे अधिक परम प्रिय पदार्थ है—

" वित्तात्प्रियः प्रियः पुत्रात्पिण्डः पिण्डात्तथेन्द्रियम् इन्द्रिया-च्चप्रियः प्राणः प्राणादात्मापरः प्रियः ।।" प्रिय वस्तु सब अवस्थाओं में प्रिय रहती है। विपत्ति हो चाहे सम्पत्ति उस समय जैसा आत्मा प्रिय होता है वैसा प्रिय दूसरा कोई भी पदार्थ नहीं होता। स्त्री पुत्र धन जन घर आदि पदार्थ तथा व्यापार खेती गोपालन, राजसेवा और चिकित्सा आदि नाना प्रकार की क्रियायें आत्मा के ही लिये हैं। क्या प्रवृत्ति क्या निवृत्ति तथा और जो कुछ भी जितना भी चेष्टा का विषय है वह सब आत्मा के लिये ही है, अन्य के लिये नहीं। अज्ञानी पुरुष सुख स्वरूप आत्मा को न जानकर ही बाहरी सुख को पाने के लिए उद्योग करता है। परन्तु कोई भी पण्डित पुरुष सुख स्वरूप आत्मा को जानकर बाहरी सुख के लिये यत्न नहीं करता। अज्ञानी पुरुष स्वभाव से ही स्थूल और सूक्ष्म शरीर को आत्मा मानकर और आत्मा की सुख स्वरूपता को भूलकर दुःख दायक विषयों से सुख चाहता है।

आत्मा अन्य पदार्थ है और सुख उससे अन्य पदार्थ ऐसा निश्चय कर के मूढ़ पुरुष यथार्थ में बाहरी सुख के लिए यत्न करता है। इस संसार में प्रिय पदार्थ का ध्यान करने, उसको देखने और भोगने में सब प्राणियों को जिस आनन्द का अनुभव होता है वह आनन्द उस पदार्थ का धर्म नहीं है क्योंकि उसकी व्याप्ति तो मन में ही होती है—जैसे मृगतृष्णा जल सर्वथा असत्य ही होता है।।

ईश्वर और जीव

प्रत्येक पिण्ड में जो अन्तः करण के सहित आनन्दस्वरूप चेतन है वह जीव कहलाता है। सर्व व्यापी चेतन एक एक होने पर भी अन्तः करणयुक्त जीव अनेक देह होने के कारण अनेक दिखाई देते हैं। जैसे एक ही सर्व व्यापक आकाश अनेक घट रूप उपाधियों के कारण अनेक घटकोशों के रूप में दिखाई देता है, महासागर में जल अखण्ड रूप से एक समान व्याप्त है, किन्तु जब हमारी दृष्टि एक विशेष उसके सूक्ष्म स्थान पर जाती है तब उसे जल विन्दु कहते हैं। और जब सम्पूर्ण जल का विचार करते हैं तब उसे महा-सागर कहते हैं।

एक उदाहरण और लीजिये— हमारे पास सौ नये पैंसे हैं, उनमें से एक को तो एक नया पैंसा कहते हैं और सारे समुदाय को रूपया, वैंसे ही एक एक देह में व्याप्त अन्तः करण युक्त चेतन को "जीव" कहते हैं और सब देहों में व्याप्त अन्तः करण युक्त चेतन को ईश, ईश्वर, परमेश्वर या भगवान् कहते हैं। जीव को अपने देह का ही अभिमान होता है परन्तु ईश को सारी सृष्टि का अभिमान होता है। देह में संस्कार युक्त चेतन को जीव और संस्कार रहित चेतन को चेतन, आत्मा कूटस्थ साक्षी आदि नामों से कहा जाता है। इसी प्रकार सारी सृष्टि में व्याप्त सव जीवों के संस्कार समुदाय सहित चेतन को ईश, ईश्वर परमेश्वर या भगवान कहते हैं। और संस्कार समुदाय रूप उपाधि से रहित चेतन को ब्रह्म, परब्रह्म, परा-विभूति आदि नामों से कहते हैं।

यों तो जीव, आत्मा ईश और ब्रह्म सब एक ही सच्चिदानन्द है। जीव का अन्तः करण विकार या अज्ञान अथवा अविद्या से युक्त है, इसी अविद्या के कारण वह स्वयं आनन्द घन होने पर भी अपने

को दुःखी मानता है तथा पूर्ण होने पर भी अपूर्ण मानता है। इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के आगे एक देह तो इतना अल्प है कि नहीं के तुल्य है, इसी से वह अज्ञानी कहलाता है। अल्प उपाधियों में व्याप्त जीव अल्प का अभिमानी होने से अल्पज्ञ है, और सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त होने के कारण सर्वज्ञ एवं स्वयं सिद्धि है। इसी से ज्ञान उसकी उपाधि कहा जाता है। वे भगवान् सर्व शक्ति, सत्य संकल्प, पूर्ण-दया और पूर्णकरूणा आदि दिव्य गुणों से विभूषित हैं।

इसी से उन्हें सगुण विभूति या सगुण ब्रह्म कहते हैं। अज्ञानी जीव अपूर्ण निः सहाय और दुःखी होने के कारण पूर्ण एवं सर्व शक्तिमान् परमेश्वर की कृपा सम्पादन करना चाहे, उनकी सहायता मांगे यह पूर्णतया स्वाभाविक ही है। भगवान् के बिना जीव का कोई और सहायक न होने से उसे भगवान् की अनन्य शरणागति ही अभीष्ट होती हैं। जीव के एक मात्र आधार भगवान् ही हैं उनपर उनका स्वभाव से ही अत्यन्त उत्कृष्ट और अविच्छिन्न प्रेम है, क्यों-कि तत्वतः तो वे एक ही हैं जैसे जीव का भगवान् पर वैसे ही भगवान् का भी जीव पर स्वाभाविक प्रेम है। जीव भगवान् के साथ अपना सम्बन्ध जान ले उसका यह स्वभाव ही है इसके लिए कोई प्रयास की आवश्यकता नहीं है, किन्तु अज्ञान वश सम्बन्ध को भूले हुये हैं तो भी स्वाभाविक होने के कारण वह प्रेम सहज ही में प्रकट हो सकता है, परन्तु वह विषयों में इतना लिपटा हुआ है कि ईश्वर की ओर ध्यान के लिये समय नहीं दे पाता। यदि वह एक क्षण के लिए भी विषयों से मुंह मोड़ ले तो वह सहज ही में ईश्वर की तरफ मुड़ सकता है। और उसके हृदय में भगवत्प्रेम हो सकता है जिसके सुख का त्रिलोक में कोई तुलना नहीं। —

सन्मुख होहिं जीव मोहि जबहीं।
कोटि जन्म अघ नाशों तबहीं ।। [तुलसी दास]

भगवान् सर्वज्ञ हैं वे यह जानते हैं कि जीव अपना ही अंश है इसी से जीव पर उनका स्वाभाविक प्रेम है। वे जीव को कभी नहीं भूलते। उसकी पूर्ण सहायता करने को और उसके योग क्षेम का निर्वाह करने के लिये तो वे तैयार बैठे हैं वे यहां तक करना चाहते हैं कि उसके अन्तः करण में व्याप्त अज्ञान को दूर करके ज्ञान ज्योति जगा दें जिससे उसके सब अन्धकार दूर हो जांय फिर कोई दुःख हो ही नहीं, तथा वह जन्म मरण की उपाधि से मुक्त होकर परमानन्द और अपने स्वरूप को प्राप्त हो जाय। परन्तु बात यह है कि भगवान् तो जीव की ओर मुंह किये एकदम तैयार खड़े हैं किन्तु जीव ने उनकी ओर पीठ करके विषयों की ओर आप मुख घुमा रखा है, वह विषयों में ही लिप्त है, उनमें ही रममाण है अतः विषयों से मन हटाकर प्रभु की ओर लगाने से उनकी प्राप्ति होगी साथ ही अज्ञानान्धकार का भी नाश होगा—

"जग ते रहु छत्तीस ह्वै राम चरण छः तीन।
तुलसी देखु विचार हिय है यह मतो प्रवीन" [तुलसीदास]

माया—

१—शास्त्रों में अनेक प्रकार से व्याख्यायें माया के सम्बन्ध में मिलती हैं, उनका सार यह है जो बस्तु भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों काल में है ही नहीं, उसको 'है' ऐसा मानना माया है।

२—जीव के आत्म स्वरूप को अपने आवरण से जो रक्षा करती है वह 'माया' है।

३—जो वस्तु यथार्थ ज्ञान होने के उपरान्त समूल निवृत्त हो जाती है उसका नाम 'माया' है।

४—कार्य कारण (जगत कार्य और परमात्मा उसका कारण है) के भेद को जो बतावे वह माया है।

५—माया वास्तव में कुछ नहीं है परन्तु वेद में आत्मा को जगत का कारण तथा सम्पूर्ण जगत् का रूप कहा है, इससे जगत का कारण सिद्ध होने के लिए अर्थात् 'जगत के उत्पन्न होने में परमात्मा आदि कोई भी कारण भूत है' ऐसा निश्चय होने के लिये 'माया' की केवल कल्पना की गयी है।

६—सर्वाधिष्ठान जो आत्मा है उसक साक्षात्कार द्वारा जिस अज्ञान की निवृत्ति से सर्वत्र पर ब्रह्म ही—परब्रह्म भासमान होता है—वह अज्ञान ही 'माया' है।

७—परात्पर भगवान् की उस आदि शक्ति महा माया का नाम 'माया' है जो भगवान् की सत्ता पाकर समस्त जगत् विलास को रचती है। इस माया का आवरण भगवत्कृपा से, उनके भजन से निवृत्त होता है—

दैवी ह्येषागुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते माया मेतां तरन्ति ते॥

[गीता २ अ०]

हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं।
भजहु राम सब काम तजि अस बिचार मन माहिं॥

[तुलसी दास

यह भगवद् भजन जीव-ब्रह्म की अभिन्नता अर्थात् समस्त दृश्य प्रपञ्च की निःसारता के बोध के साथ ब्रह्म की सत्यता के अवबोध में पर्यवसित होता है। इस प्रकार क भगवद् भजन वैदिक महावाक्यों के यथार्थ बोध से सुदृढ़ होता है।

महावाक्य—

जीव तथा परब्रह्म की एकार्थता—बोधक वाक्य 'महावाक्य' कहा जाता है। समग्र वेद में इस प्रकार के बारह महा वाक्य हैं।

परन्तु ऋग्वेदान्तर्गत ऐतरेयोपनिषद् का 'प्रज्ञानं ब्रह्म' यजुर्वेदान्तर्गत वृहदारण्य कोनिषद् का 'अहं ब्रह्मास्मि' सामवेदान्तर्गत छान्दोग्योपनिषद् गतं 'तत्वमसि' और अथर्व वेदान्तर्गत माण्डूक्योपनिषद्गत 'अयमात्मा ब्रह्म' ये चार महावाक्य ही मुख्य रूप से प्रसिद्ध हैं।

पञ्चकोष के विषय :— ब्रह्मात्यैक्यानुभव का मूल वैराग्य है, वैराग्य उत्पन्न होने में पञ्चकोश परिज्ञान अति उपयोगी है कोश शब्द का अर्थ आच्छादन करना है।

पञ्चकोश ये हैं:—

(१) अन्नमय कोश (२) प्राणमय कोश (३) मनोमयकोश (४) विज्ञानमय कोश (५) आनन्दमय कोष

अन्नमय कोश:—अन्नादि से बना हुआ यह स्थूल देह अन्नमयकोश है अर्थात् अन्नमय कोश स्थूल शरीर को कहते हैं।

प्राणमयकोश:—पांचकर्म इन्द्रियों के सहित पांच प्राण प्राणमय कोश है। प्राणमय का दूसरा नाम क्रिया शक्ति भी है क्योंकि प्राणमय कोश के सहारे ही शरीर की सब क्रियायें होती हैं।

मनोमय कोश:—मन और श्रोत्र, त्वक् जिह्वा, और प्राण, रूपपांचो ज्ञान - इन्द्रियों के मिलने से जो कोश होता है उसे मनोमयकोश कहते हैं। मनोमय कोष की सहायता से ही आत्मा में इच्छा उत्पन्न होती है। तात्पर्य यह है कि मन का स्वरूप ही संकल्प विकल्प वाला है। आत्मा में इच्छा का होना मनोमय कोश से ही होता है।

विज्ञानमय कोश:—बुद्धि और त्वक्, श्रोत्र, चक्षु, जिह्वा, घ्राणरूप पांचो ज्ञान इन्द्रियों के मिलने से जो प्रकारा उत्पन्न होता है, उसे विज्ञान मय कोश कहते हैं। इसका दूसरा नाम ज्ञानशक्ति भी है, क्योंकि बुद्धि और पांचो ज्ञान - इन्द्रियों की सहायता से आत्मा को सब पदार्थों का ज्ञान होता है।

आनन्दमय कोश:—कारण शरीर रूप अविद्या में रहने वाला रज एवं तम गुण के संयोग से मलिन और प्रिय तथा मोद आदि बृत्तियों वाला जो कोश है उसें आनन्द मय कोष कहते हैं। कारण, प्रिय मोदयुक्त पदार्थ की प्राप्ति से मुदित और सुखित होता है।

त्रिविध देह (स्थूल, सूक्ष्म, कारण) पांच कोशों में विभक्त है।

स्थूलदेह:—अन्नमय कोश से बना है

सूक्ष्मदेह:—प्राणमय, मनोमय, और विज्ञान मय इन तीन कोशों से बना है।

कारण देह:—आनन्द मय कोश है।

इस प्रकार 'वेदान्त' के किन्हीं प्रमुख तथ्यों का परिचय प्राप्त करने से हमें 'शान्ति' अन्यास ही प्राप्त हो सकती है। शांत पुरुष की ये विशेषताएं हैं—

शान्त कौन है ?

१—जिसने साधना के द्वारा अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करली है जो समस्त प्राणियों और बस्तुओं के प्रति समदृष्टि रखता है भविष्य के लिये प्रारब्ध अनुसार प्राप्त होने वाले सुख दुःखों को न चाहता है और न छोड़ता है, उसे शान्त कहते हैं।

२—जिसकी दृष्टि समस्त प्राणियों के प्रति प्रेमपूर्ण और अमृत धारा के समान सुखद होती है, 'उसे शान्त' कहते हैं।

३—जिसका अन्तस्तल सर्वदा के लिये शीतल हो चुका है, जो भावनाओं में डूबने नहीं लगता - व्यवहार करते हुए उसमें आसक्त नहीं हो जाता, उसे 'शान्त' कहते हैं।

४—चिर काल तक रहने वाली आपत्तियों में और महा प्रलय उपस्थित होने पर भी जिसके मनमें घबराहट नहीं होती त्रिविध, (स्थूल, सूक्ष्म कारण) शरीर के प्रति अहंता, ममता नहीं होती उसे 'शान्त' कहते हैं।

५—जिसकी मनोबृत्तियां व्यवहार करते समय भी रागद्वेष आदि दोषों से (दूर रहती हैं) दूषित नहीं होती तथा आकाश के समान निर्लेप और स्थिर रहती हैं उसे 'शान्त' कहते हैं।

[यो० वा० मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण अध्याय १३]

क्या ऐसा शान्त भाव हमें अभिलाषित नहीं है? अवश्य अभिलाषित है, अतः एतदर्थ हमें इस तत्त्वदीप ग्रन्थ का अवलोकन अवश्य करना चाहिये।

वैराग्य सम्बन्धी कुछ श्लोक

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिरं गेहिनी ।
सत्यं सूनु रयं दया च भगिनी भ्राता मनः संयमः ॥
शय्या भूमि तलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनम् ।
एतेयस्य कुटुम्बिनो वद सखे कस्माद्भयं योगिनाम् ॥ १ ॥
सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया सखा ।
शान्ति पत्नी क्षमा पुत्रः षडेते मम वान्धवाः ॥ २ ॥ चाण्क्य नीति
शरीर पोषणार्थी सत् य आत्मानं दिदृक्षति ।
ग्राहँ दारुधिया धृत्वा नदीं ततु स इच्छति ॥ ३ ॥
विषयाख्य ग्रहो येन सुविरक्त्यासिना हतः ।
स गच्छति भवाम्भोधेः पारं प्रत्यूह वर्जितः ॥ ४ ॥
वासनावृद्धितः कार्यं कार्यवृद्धया च वासना ।
वर्द्धते सर्वथा पुंसः संसारो न निवर्तते ॥ ५ ॥
तच्चिन्तनं तत्कथनं मन्योन्यं तत्प्रबोधनम् ।
एतदेकपरत्वं च ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुधाः ॥ यो० वा० ॥ ६ ॥
दृश्या संभव ःवोधेन राग द्वेषादि तानवे ।
रतिर्नवोदिता याऽसौ ब्रह्माभ्यासः स उच्यते ॥ यो० वा० ॥ ७ ॥

॥ शुभम् ॥

ओ३म् ।

श्रीगणेशायनमः ।

वाग्देवीं वैप्रणम्यादौसर्वदुःखौघनाशिनीम् ॥
गणेशंसर्वविघ्नानांनाशकंसर्वसौख्यदम् ॥ १ ॥
नारायणश्रमन्नत्वागुरू शंकररूपिणम् ॥
मुमुक्षूणांहितार्थायतत्त्वदीपोऽभिधीयते ॥ २ ॥

भावार्थ श्लोकः ।

भावार्थबोधिनीटीकाक्रियतेसुमनोरमा ॥
बालानामाशुबोधायरामकृष्णविपश्चिता ॥ १ ॥

भाषार्थ—स्वचिकीर्षित ग्रन्थ के निर्विघ्न परिसमाप्त्यर्थ ग्रन्थ-कर्त्ता पूर्व नमस्कारात्मक मङ्गलका निबन्धन करते हैं। सर्व दुःखों के राशिका नाश करनेहारी वाग्देवीको निश्चय करके आदि में

प्रणाम करके फिर सर्वविघ्नों के नाशकारक और सर्व प्राणियों को सौख्यदायक गणेशजी को प्रणाम कयकर ॥ १ ॥ पुनः शङ्कररूपी नारायणाश्रम गुरुको नमस्कार कयकर मुमुक्षुजनों के कल्याणार्थ तत्वदीप नामक ग्रन्थ का मैं कथन करता हूँ ॥ २ ॥

व्यासादीनाम्महर्षीणां वेदान्तमतदर्शिनाम् ।
मतञ्चात्र प्रवक्ष्यामि रागद्वेषभयापहम् ॥ ३ ॥

भावार्थ—वेदान्तमतदर्शी व्यासादि महर्षियों का जो अद्वैत मत है उसको इस ग्रन्थ में मैं कहूँगा जो कि विचारने मात्र से अविद्या कार्य्य रागद्वेष भयादिकका विनाश करने वाला है ॥ ३ ॥

अम्नायैर्धर्म्मशास्त्रैश्चयत्स्वकर्म्मविवर्णितम् ॥
तद्विसेव्यंनृणांश्रेयोह्यभयंमोक्षमिच्छताम् ॥ ४ ॥

भावार्थ—श्रुति स्मृतियों से वर्णित अपना वर्णाश्रमधर्म्म सन्ध्योपासन अग्निहोत्रादि वही श्रेष्ठ कर्म्म अभयमोक्ष के इच्छा वाले मनुष्यों को सेवनीय है ॥ ४ ॥

अग्निहोत्रादिकर्म्माणिज्ञानार्थानिजगौश्रुतिः ॥
सूत्रे शारीरकेऽप्येवमेतव्यासेनवर्णितम् ॥ ५ ॥

भावार्थ—अग्निहोत्रादि कर्म्मज्ञान प्राप्त्यर्थ कहैंऐसा श्रुतिनेकही है। तथाचश्रुतिः ॥ तमेतम्वेदानु बचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेनदानेन तपसा नाशकेन ॥ तिसइस आत्मा को ब्राह्मणकहीं ब्रह्मरूप होनेके इच्छावाले मुमुक्षुजन जानने की इच्छा करते हैं किन किन

साधनो से यज्ञ से दान से अनाशकरूप तप से इसी प्रकार शारीरक सूत्र में व्यासमहर्षि करके वर्णित है॥ तथाचसूत्रम्॥ अग्निहोत्रादितुतत्कार्य्यायैवतद्दर्शनात्॥ अग्निहोत्रादि कर्म्म मोक्ष रूप कार्य्य हैं जिसके एवम्भूत ज्ञान के अर्थ है श्रुत में तैसादेखनेसे॥ ५॥

तस्यैतपोदमः कर्म्मेत्यपरावैदिकी श्रुतिः॥
विवोधयतिविद्यायास्साधनत्वंहिकर्म्मणाम्॥ ६॥

भाषार्थः। श्रुतिः। तस्यैतपोदम कर्म्मेतिप्रतिष्ठावेदास्सर्वाङ्गानिसत्यमायतनम्॥ यह अपर श्रुतिसन्ध्योपासनादि कर्म्मों को ब्रह्मविद्या का साधन कहती है॥ श्रुत्यर्थः। तिसब्रह्मविद्या के अर्थताद्दशवेदोक्तकर्म्म हैं सर्वाङ्गों के सहित चारो वेद प्रतिष्ठा कहीं पादरूप है सत्य भाषण इसका आयतन कहीं स्थान है॥

यजुश्श्रुतिस्तथैवाहज्ञानकर्मसमुच्चयम्॥
वशिष्ठोऽपिजगादैवंरामायविदितात्मने॥ ७॥

भा०। श्रुति॥ विद्याञ्चाविद्याञ्चयस्तद्वेदोभयँ सहअविद्ययामृत्युंतीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते। अर्थः। विद्या कहीं ब्रह्मज्ञान अविद्या कहीं वेदोक्त इन दोनों का जो मनुष्य एकसाथसेवन करता है वह अविद्या शब्द वाच्यकर्म्मों के अनुष्ठान से मृत्यु कहीं पाप को तरकर ब्रह्मविद्या करके अमृत कहीं मोक्ष को प्राप्त होता है। ऐसे ही वशिष्ठ महर्षि विदतात्माराम जी के वास्ते कहे हैं॥ केवलात्कर्म्मणोज्ञानान्नहि मोक्षोऽभिजायते किन्तूभाभ्यांहि मोक्षस्यादुभयं साधनम्विदुः॥ ७॥

मुण्डकेऽपिचव्याख्यातंवोधस्यकर्म्मसाधनम्॥
सत्येनलभ्यस्तपसाह्येषआत्मेतिवाक्यतः॥ ८॥

भाषार्थः— मुण्डकोपनिषद् में भी ऐसा ही व्याख्यात है ॥ सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा इत्यादि वाक्यों से । श्रुतिः । सत्येन लभ्यस्तपसाह्येष आत्मासम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्य्येणनित्यम् ॥ श्रुत्यर्थः । सत्यभाषण करके और कृच्छ्रचान्द्रायणादि रूप तप से सम्यग् ज्ञान से अष्टाङ्ग मैथुनत्यागरूपनित्य ब्रह्मचर्य्य से यह आत्मा प्राप्त होने योग्य है ॥ ८ ॥

रामेणैवतथाचोक्तं लक्ष्मणायानुजायवै ॥
कर्त्तव्यताप्राणभृतामित्याद्यैर्वाक्यरूपकैः ॥ ९ ॥

भा०—रामचन्द्रजी करके भी लक्ष्मण लघु भ्राता के लिए तैसा निश्चय से कथित है । कर्त्तव्यताप्राणभृतामित्यादि वाक्यों से । तथाचरामगीतायाम् । कर्त्तव्यता प्राणभृताम्प्रचोदिता विद्या सहायत्व-मुपैति सापुनः । श्रुतिस्मृतियों से विहित जो क्रिया सो प्राणियों करके अनुष्ठान करने योग्य है क्योंकि क्रिया ब्रह्म विद्या का सहायक है और अन्य श्रुतिस्मृतियों से भी कर्म्मब्रह्म विद्या का साधन कहा है ॥ ९ ॥

अग्निहोत्रादिकङ्कर्म्म यदिबोधस्यसाधनम् ॥
नकर्म्मणानप्रजयेत्यादि वाक्यस्यकागतिः ॥१०॥

भा०—अब यहां पूर्व पक्षी शङ्का करे हैं यदि अग्निहोत्रादि कर्म्म ब्रह्मज्ञान के साधनभूत हैं तब न कर्म्मणाप्रजया इत्यादि वाक्य की सङ्गति कैसे होवेगी श्रुतिः—न कर्म्मणा न प्रजयाधनेनत्यागेनैके-ह्यमृतत्वमानशुः । श्रुत्यर्थः न कर्म्मसे न प्रजा से न धन से पूर्व विवेकी पुरुषों ने अमृत कहीं मुक्तिको प्राप्त हुये हैं किन्तु केवल सर्वैषणात्यागरूपसन्यास से मोक्ष को प्राप्त हुये हैं ॥ १० ॥

कर्म्मणो बोधहेतुत्वम्बोधस्यमुक्तिहेतुता ॥
स्फुटायतस्ततस्सम्यङ् नकर्म्मेत्यादिसङ्गतम् ॥ ११ ॥

भा०—सिद्धान्ती समाधान करते हैं कि कर्म्म को आत्म बोध का हेतुत्व है और आत्मबोध को मुक्ति का कारणता प्रसिद्ध ही है जिससे तिससे न कर्म्मणान प्रजया इत्यादि वाक्यों की सङ्गति की हानि नहीं है क्योंकि वेदोक्त अग्नि होत्रादि कर्म्म मुक्ति का साक्षात् कारण नहीं है किन्तु आत्मस्वरूप ज्ञान मुक्ति का साक्षात् कारण है तथा च श्रुतिः ॥ ज्ञानादेवतुकैवल्यम् । ऋतेज्ञानान्नमुक्तिः ज्ञात्वादेवं सर्वपाशहानिः ॥ ज्ञान से निश्चय करके कैवल्य प्राप्त होता है ज्ञान के बिना मुक्ति होवै नहीं देव को जानकर सर्वपाशों की हानि होती हैं इत्यादि प्रमाणों से आत्मज्ञान साक्षात्मोक्ष का साधन है इससे श्रुति विरोध नहीं ॥ ११ ॥

कर्म्मणोयदिबोधस्यसाधनत्वन्निरूपितम् ॥
वैराग्यादिकमेतस्यसाधनंश्रूयतेकथम् ॥ १२ ॥

भा०—शङ्का । यदि आत्मज्ञान का अग्निहोत्रादि कर्म्म ही साक्षात्मोक्ष का साधन है तब वैराग्यादि चतुष्टय इस आत्म ज्ञान का साधन क्यों कर श्रुति होता है ॥ १२ ॥

साधनंद्विविधञ्चात्रशास्त्रकारैर्वि बोधितम् ॥
बहिरङ्गाभिधञ्चाद्यमन्तरङ्गन्द्वितीयकम् ॥ १३ ॥

भा०—समाधान इस शास्त्रविषे शास्त्रकारोंकरके दो प्रकार का साधन कहा गया है प्रथम बहिरङ्ग दूसरा अन्तरङ्ग वैराग्यादि को ज्ञान साधन होने में विरोध नहीं बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग का निर्णय अगिले वाक्य में करते हैं ॥ १३ ॥

सन्ध्याहोमजपाद्यञ्चबहिरङ्गम्प्रकीर्त्तितम् ॥
वैराग्यादि तथा प्रोक्तमन्तरङ्गन्तुसाधनम् ॥ १४ ॥

भा०—सन्ध्या होम जपादि ये वहिरङ्ग साधन हैं तैसे ही वैराग्यादि चतुष्टय अन्तरङ्ग साध कहे हैं ॥ १४ ॥

पाकादीनांयथालोकेनिष्पत्तिर्न्नैवदृश्यते ॥
साधनत्वमनादृत्यतद्बोधोनसिद्ध्यति ॥ १५ ॥

भा०—साधन विना आत्मज्ञान की सिद्धि होती नहीं इस अर्थ को दृष्टान्त से स्पष्ट करते हैं जैसे लोक में पाकादिकों का अग्न्यादि साधन विना सिद्धि होती नहीं तैसे वैराग्यादि साधनों का अनादर करके आत्म ज्ञान की सिद्धि होती नहीं इसीसे यहां बैराग्यादि साधनों का रूप कहा है ॥ १५ ॥

वैराग्यम्प्रथमम्बोध्यम्विवेकाख्यन्ततः परम् ॥
शमादिकन्तृतीयन्तुमुमुक्षुत्वन्तुरीयकम् ॥ १६ ॥

भावार्थः—वैराग्य को प्रथम साधन कहा है तिससे परे नित्यानित्यवस्तु विवेक को द्वितीय साधन जानो शमादिको तृतीय साधन जानों । शङ्का—अन्यत्र विवेक को प्रथम साधन कहा है यहां वैराग्य को प्रथम साधन क्यों कहा । समाधान-वैराग्य आत्म ज्ञान का परम उत्कृष्ट साधन है इससे पहिले वैराग्य को प्रथम साधन कहा है शङ्कराचार्य्य भी अपरोक्षानु भूति में बैराग्य को प्रथम कहा है ॥१६॥

दृष्टेषुचश्रुतार्थेषुगुणेषुयातिरस्क्रिया ॥ इच्छाया कविभिः प्रोक्तम्वशीकाराभिधादिमत् ॥ १७ ॥

भा०—इस लोक में देखे हुए पुष्प चन्दन स्त्री वस्त्रादि और श्रुति स्मृतियों से जो श्रुत होता है स्वर्गादि भोग इनमें इच्छा का त्याग है सोई विद्वानों करके वशीकार नामवाला प्रथम वैराग्य कहा गयाहै ॥ १७ ॥

सात्विकेष्वपिसौख्येषुसवीजजनितेषुच ॥
इच्छाराहित्यमेतद्धिवैराग्यम्परसंज्ञकम् ॥ १८ ॥

भा०—सवीज समाधिके अनुष्ठान से उत्पन्न हुआ सात्विक सुखों में जो इच्छा का त्यागना है वही परम संज्ञक वैराग्य विद्वानों करके कहा हुआ है अर्थात् सवितर्क सविचारनिर्विचार सानन्द-निरानन्द सास्मित निरास्मित भेद से सवीज वा सम्प्रज्ञात समाधि आठ प्रकार की है हरिहरादि साकार मूर्तियों में जो चित्त की स्थिति उसको सवितर्क सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं अरु जो पूर्वोक्तध्येय मूर्तियों में चित्त की ध्येयाकार रूप से स्थिति उसको निर्वितर्क कहते हैं शब्दादि पञ्च विषयों में जो चित्त की एकाग्रता उसको सविचार-संप्रज्ञात कहते हैं अरुउनपूर्वोक्तशब्दादिविषयों में जो चितकी तद्रू-पता से स्थित उसको निर्विचार सम्प्रज्ञात कहते हैं और श्रोत्रादि-इन्द्रिय केसात्विक आकार में जोचित्त की एकाग्रता होनी वह सानन्द सम्प्रज्ञात है अरु उनइन्द्रियों के सात्विक आकार में जो चित्त की तिस तिस रूपसे स्थितिपना उसको निरानन्द कहते हैं पुरुष वा महत्तत्व में चित्तकी एकाग्रता सोईसास्मित तद्रूपता करके जो स्थिति सोई निरास्मित है यही आठ प्रकार का सम्प्रज्ञात वासवीजसमाधि है जिसदशा में राजसी तामसीवृत्तियों के निरोध हुये सात्विकीवृत्ति अवशिष्ट रहती है तब सात्विकानन्द की प्रतीति होती है उसमें भी त्याग बुद्धि करना इसको वैराग्य कहते हैं पतञ्जलिने ऐसा कहा है ॥ तत्परम्पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ॥ १८ ॥

शब्दादिविषयालोकेसर्व्वथानर्थकारिणः ॥
तत्रासक्त्यामहामूढावैवश्याद्यान्तिसंसतिम् ॥१६॥

भा०—इसलोक विषेशब्दादिविषयसर्व्वथा अनर्थकरी हैं तिनमेंआसक्ति करके मूढ़पुरुषों ने विवशहोने से जन्ममरण रूप संसार को प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥ हरिः ओ३म् तत्सत् ॥

विकारशालिनीनारीमांसास्थिचर्म्मभूषणा ॥
तत्रनैवास्तिरम्यत्वमतोहेयामुमुक्षुभिः ॥ २० ॥

भा०—स्त्रीसर्व्वाङ्गों में विकारवाली है मांस हड्डियें और चर्म्म से सुशोभित है इससे तिसमें कुछ रमणीय वस्तु नहीं किन्तु सम्पूर्णविकार ही है इससे मुमुक्षुजनों करके त्याग करने योग्य है ॥

श्री शिवः

वाल्येऽपिदुःखाधिकमेवश्रूयते तथैवतारुण्यमतीव दुःखदम् ॥ जीर्णोपिकृच्छ्रङ्किमुवर्ण्यंनीयकङ्किंसौख्यमस्तीहशरीरभाजिनाम् ॥ २१ ॥

भा०—वाल्यावस्था में भी पराधीन होने से अधिकदुःख देखते हैं तैसेही तारुण्य में भी अत्यन्त कष्टदायक है नाना प्रकार के ताप का अनुभव होने से बृद्धावस्था में कष्ट की क्या वार्त्ता करनी है नेत्रादिइन्द्रियों के विनष्ट होने से वह महा दुःख रूप ही है यहां शरीरधारियों के क्या सुख है ॥ २१ ॥

अनित्यलोकवस्तुनोविचारणादभिद्दणशोभवेदि-हपरत्रचविवेकिनांसुसम्मतम् ॥ विरागसंज्ञकम्मह-त्परात्मबोधकारणन्ततोमुमुक्षुभिस्सदा विवेचनीय मैहिकम् ॥ २२ ॥

भा०—अनित्यलोक के वस्तु हैं पुत्रवित्तादि तिनके अनित्यता के वार - वार विचारने से इस लोक के विषयों में व पारलौकिक स्वर्गादि सुखों में वैराग्य संज्ञक जो महा साधन जो कि परमात्म-बोध का कारण है व विवेकी पुरुषों को अति सम्मत है वह दृढ़ होता है तिससे मुमुक्षु पुरुषों करके सदैव लौकिक पदार्थों की अनित्यता ही विचारणीय है ॥ २२ ॥

सत्यम्ब्रह्मै वतद्भिन्नमनित्यमितिचिन्तनम् ॥
नित्यानित्यविवेकोऽयमज्ञानक्लेशनाशनः ॥२३॥

भा०—ब्रह्म सत्य हैं तिससे भिन्न सर्व्व नाम रूपादि उपाधि-मिथ्याभूत है एवम्भूत जो चिन्तन यह नित्याऽऽनित्य वस्तु विवेक है अज्ञान रूप क्लेश का नाशक है ज्ञान का श्रेष्ठ यह साधन है ॥ २३ ॥

आत्मभिन्नगुणेभ्यश्चमनसोनिग्रहश्शमः ॥
दमस्तुकथितोधीरैरिन्द्रियाणांनिरोधनम् ॥२४॥

भा०—शमादि के स्वरूप का वर्णन करते हैं आत्मभिन्न-शब्दादि विषयों से मन का निरोध यही शम है पुनः शब्दादि विषयों से श्रोत्रादि इन्द्रियों को रोकना यही विद्वान पुरुषों करके दम कथित है ॥ २४ ॥

शब्दादिविषयाणाञ्चसर्वथानर्थकारिणाम् ॥
निवृत्तिर्य्याबुधैरुक्तासैवोपरतिरुच्यते ॥ २५ ॥

भा०—सर्वथा अनर्थकारी शब्दादि विषयों से जो चित्त का अत्यन्त निरोध विद्वानों करके कहा गया है वही निश्चय से उपरति-वा उपरम कहाता है कोई-कोई उपरम शब्द का सर्वैषणा त्यागरूप सन्यास अर्थ करते हैं शङ्कराचार्य्यने उपरम शब्द का स्वधर्म्मा-नुष्ठानरूप अर्थ माने हैं ॥ २५ ॥

शीतोष्णसुखदुःखादिसहिष्णुत्वन्तितिक्षुता ॥
आचार्य्याम्नायवाक्येषुश्रद्धाम्विश्वसनङ्गुः ।२६।

भा०—शीत उष्ण सुख दुःखमानापमान इत्यादि की सहनता वहीतितिक्षा कही है आचार्य्य वेद वाक्यों में जो विश्वास उसको श्रद्धा कहे हैं ॥ २६ ॥

एकाग्र्यञ्चित्तवृत्तेश्चसमाधानन्निरूपितम् ॥
मोक्षोमेस्यादितीच्छाहिमुमुक्षुत्वम्प्रकीर्त्तितम् ।२७।

भा०—चित्त वृत्ति का जो एकाग्रता यही समाधान कहा है सांसारिक जन्ममरणादि दुःखों से छूट जाऊं इस इच्छा को मुमुक्षुत्व कहते हैं ॥ २७ ॥

एतत्साधनसम्पन्नः पुमान्सगुरुमाश्रयेत् ॥
विशुद्धकुलसम्भूतम्वेदशास्त्रार्थपारगम् ॥ २८ ॥

भा०—इन पूर्वोक्त साधनों से सम्पन्न पुरुषस्वस्वरूप ज्ञान के अर्थ विशुद्ध कुल में उत्पन्न वेदशास्त्र के अर्थ का पारगामी श्रेष्ठ गुरु का आश्रय करै ॥ २८ ॥

विज्ञानविध्वस्तसमस्त किल्विषम्वेदान्तशास्त्रार्थविचारणेक्षमम् ॥ ब्रह्माब्धिमग्नाप्तसमस्त सौभगम् गाम्भीर्य्यक्षान्त्यादिगुणैस्सुशोभितम् २६

भा०—स्वस्वरूपज्ञान करके विनष्ट हुआ है सर्व्वपातक जिनके वेदान्त शास्त्रों के विषे जो कुशल है ब्रह्मानन्द सागर विषे जो निमग्न चित्त है इससे प्राप्त हुआ है समस्त सौभाग्य जिनकरके अर्थात् जो की पूर्ण काम है गाम्भीर्य्य क्षमादि श्रेष्ठ गुणों से जो सुशोभित है तथाचश्रुतिः। तद्विज्ञानार्थं सगुरु मेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियम्ब्रह्मनिष्ठम्। श्रुत्यर्थः—उस उस आत्मा के विज्ञानार्थ सो मुमुक्षुपुरुष समित्पाणिः कहींकाष्ठ कुशादि हाथ में लेकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु को प्राप्त होवै ॥ २६ ॥

विवेकसम्पन्नधियाजनश्च पृच्छेत्तु तत्वम्परमम्परस्यकृपालुरस्मैकृपणायदुःखैर्व्वदेत्तु तत्वंश्रुति-सार भूतम् ॥ ३० ॥

भा०—वह मुमुक्षु पुरुष विवेक युक्त बुद्धि से परमात्मा के श्रेष्ठ स्वरूप ज्ञान को उस पूर्वोक्त गुरु से पूछे कृपालु गुरु इस पूर्वोक्तगुण सम्पन्न व सांसारिक दुःखों से दीन हुये शिष्य के वास्ते सबवेदों का सार आत्मतत्व का उपदेश करैं श्रुतिः। प्रोवाचतान्तत्वतो ब्रह्म विद्याम्। श्रुत्यर्थः। गुरु शिष्य के वास्ते ब्रह्म विद्या को कहै जिसमें स्वस्वरूप साक्षात्कार होता है॥ ३०॥

तत्त्वमस्यादिवाक्यार्थबोधम्विनानैवसञ्जायते बोधसन्दार्ढ्यता ॥ ततोनैगमैश्श्रौतसिद्धान्तविज्ञै

स्सुसम्बोधितन्तत्वमस्यादिवाक्यम् ॥ ३१ ॥

भा०—तत्वमस्यादि महावाक्यों के अर्थ ज्ञान विना आत्म-स्वरूप ज्ञान की सम्यग्दृढ़ता नहीं होती इस लिए श्रोत्रिय श्रुति सिद्धान्त विज्ञों करके तत्वमस्यादि वाक्य सम्यक् प्रकार वर्णित है जैसे सामवेद का वाक्य ॥ तत्वमसि ॥ अथर्ववेद का वाक्य ॥ अयमात्माब्रह्म । ऋग्वेद का वाक्य ॥ प्रज्ञानम्ब्रह्म ॥ यजुर्वेद का वाक्य ॥ अहम्ब्रह्मास्मि । इन वाक्यों में से यहां सामवेदीयततत्वमसि इन महा वाक्य का अर्थ निरूपण किया गया है इन महावाक्य का उद्दालक महर्षि ने, श्वेतकेतुनाम पुत्र के वास्ते उपदेश किया है तथा च श्रुतिः । तत्सत्यंस आत्मातत्वमसि श्वेतके तो । यह छान्दोग्यके-षष्ठप्रपाठक में लिखी है ॥ ३१ ॥

तत्वम्पदाभ्याम्परमात्मजीवकौवाच्यावथा सीतिपदेनचैकम् ॥ धियातिरस्कृत्यविचारयुक्तया परोक्षप्रत्यक्षप्रकारभेदकम् ॥ ३२ ॥

भा०—तत्वमसि इसके तीन पद हैं तत्पद से परमात्मावाच्य हैं त्वंपद से जीव और असि पद से जीवेश्वर की एकता का सूचना है। यहां शङ्का करते हैं ईश्वर सर्वज्ञ निरहङ्कार अप्रत्यक्ष है व जीव अल्पज्ञ साहङ्कार प्रत्यक्ष धर्म्मवाला है। इन दोनों के तत्वमसि इस महावाक्य से एकता सिद्ध नहीं होती विरुद्ध धर्म्मवाला होने से। समाधान। विचारयुक्त निश्चयात्मक से ईश्वरगत परोक्ष सर्वज्ञत्वादि-भेद धर्म्म का जीवगत प्रत्यक्ष अल्पज्ञत्वादि रूप विरुद्ध धर्म्म का त्याग करके ॥ ३२ ॥

ग्राह्यातयोरीशक जीवकाख्ययोश्चद्रूपतान

न्दपरस्वभाविका ॥ ब्रह्मादिदेवास्सनकादिसिद्ध
कास्तदाश्रयात्तेतुगताविंशोकताम् ॥ ३३ ॥

भा०—ईश्वर और जीव इन दोनों का लक्ष्यार्थ भूत परमानन्दस्वभाववाली केवल चेतनता मात्र ग्रहण करने योग्य है क्योंकि दोनों विषेचेतनत्व समान है ब्रह्मादिक देवतावों सनकादिसिद्धोंने तिस चिद्रूपता के आलम्बन से विशोकता को प्राप्त हुये हैं। तथा च श्रुतिः। पूर्व्वं ये देवा ऋषयश्चतद्विदुस्तेतन्म या अमृतावभूवुः। श्रुत्यर्थः। पूर्व्वं उस ब्रह्म को जो देवताव ऋषियों ने जाना है वे लोग ब्रह्ममय अमृत हुये हैं ॥ ३३ ॥

भागत्यागाभिधालक्षणाचात्रवैप्रोच्यते वेद
विद्भिर्न्नचास्तीतरा ॥ अनेकस्थलेलोकदृष्टापीयं
हियथासोऽयमस्तीतिंतो देवदत्तः ॥ ३४ ॥

भा०—अब यहां ईश्वर जीव के निस्सन्देह एकता के जानने के अर्थ भाग त्याग लक्षणा का वर्णन करते हैं इस वाक्य में भाग त्याग लक्षणा वेद विदों करके कही जाती है यहां भिन्न जहतीव अजहती लक्षणा सम्भवती नहीं जिसमें विरुद्ध अशङ्का त्याग अविरुद्ध धर्म्मका ग्रहण हो वैसाही भाग त्याग लक्षणा है यही लक्षणा लोक में अनेक स्थलों में देखी हुयी है जैसे सोऽय मस्ति देवदत्तः। यहां वही लक्षणा है तद्देशतत्काल एतद्देश एतत्काल यह विरुद्ध भाग है इनका त्याग करके अविरुद्ध भाग लक्ष्यार्थभूत देवदत्त मात्र का ग्रहण होता है ऐसे ही तत्वमसि इस वाक्य विषे सर्व्वज्ञत्व अल्पज्ञत्वादि रूपविरुद्धभाग त्याग करके अविरुद्ध भाग चेतन मात्र लक्ष्या का ग्रहण होता है इससे जीवेश्वर की एकता की सिद्धि हुई ॥ ३४ ॥

निशम्यचैवंश्रुतिसार्थ वाक्यं श्रद्धान्वितोऽथं स्वगुरोम्मुखाद्वै ॥ स्थित्वास्थिरे सौख्यप्रदेसुपीठे ह्येकान्तदेशेजितषट्सपत्नः ॥ ३५ ॥

भा०—इस पूर्व्वोक्त प्रकार से तत्वमस्यादि वेदवाक्यों का अपने श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के मुख से अर्थ सहित श्रवण करके स्थिर सुख आसन पर स्थिर होकर एकान्त देश विषे मन सहित इन्द्रिय रूपछे शत्रु जीते गये हैं जिन करके एवम्भूत ॥ ३५ ॥

वैराग्यसम्पन्नविशुद्ध चेताध्यायेत्तु तत्वंश्रुति युक्तियुक्तम् ॥ आकाशवत्सर्व्वगतोऽहमात्माध्या तस्सदावैमु नतत्वसारैः ॥ ३६ ॥

भा०—वैराग्य सम्पन्न होने से विशुद्ध चित्त है जिनके मुमुक्षु पुरुष श्रुति युक्ति युक्त स्वस्वरूप का ध्यान करैं आकाश वत्सर्व्वगत आत्मा मैं हूं सर्व्वकाल में तत्वनिष्ठ मुनिजनों करके हृदय कमल विषेध्यान किया जाता है ॥ ३६ ॥

वैश्वानरोऽहमेतेषाम्भूतानांहृदिसंस्थितः ॥ प्राणापानेनसंयुक्त पचाम्यन्नञ्चतुर्व्विधम् । ३७

भा०—अग्निस्वरूप मैं इन प्राणियों के हृदय में स्थित हूं और प्राण अपान से युक्त हुआ आलेह्यचूष्य भक्ष्य भोज्य चार प्रकार के अन्न को पचाता हूं ॥ ३७ ॥ शिवः ॥

आदित्योऽहम्प्रकाशात्माप्राणिनांध्वान्तनाशनः ॥ मदाश्रयेणचैतानिभूतानिसञ्चरन्तिहि ॥ ३८ ॥

टी०—प्रकाश स्वरूप प्राणियों के अन्धकार का विनाशक आदित्य मैं हूं मेरे ही आलम्बन से यहां सांसारिक जीव जीते हैं।

वायुरूपेणजन्तूनाम्मूलाधारे वसाम्यहम् ॥
जीवनंय्येनचैतेषाम्मरणँय्यद्वियोगतः ॥ ३६ ॥

भा०—प्राणापान वायु रूप से सर्व्व प्राणियों के मूलाधार में मैंहीं वसता हूं जिस प्राण पान रूप वायु करके इन सांसारिक जीवों का जीवन होता है जिस वायु के वियोग होने से मरण होता है ॥ ३६ ॥

सुधांशुस्सर्व्वविश्वस्यतापहारीसुखप्रदः
मायायेनचजीवन्तिपितृलोकनिवासिनः ॥ ४० ॥

भा०—सर्व्व विश्व के ताप का हरण करने वाला चन्द्रमा मैं हूं चन्द्रमा रूप जिन मेरे करके पितृलोक निवासी पितर लोग जीते हैं पितरों का चन्द्रमाहीं करके जीवनहै यह श्रुति स्मृतियों में प्रसिद्ध है तथाच श्रुतिः। तंदेवाः भक्षयन्ति ॥ ४० ॥

भार्ग्गवोऽहम्विशुद्धात्माचिदानन्दोऽहमात्मभूः।
आपोऽहञ्चाहमाकाशं कालोऽहंसर्व्वदेहिनाम् ॥

भा०—विशुद्ध शरीरवाला शुक्र मैं ही हूँ वचेतन स्वरूप विषे आनन्द है जिसको एवम्भूत ब्रह्म मैं हूं जल स्वरूप मैं हूं पुनः आकाश मैं हूं सर्व्व देहियों का काल मैं हूँ ॥ ४१ ॥

यतस्सर्व्वाणिभूतानिह्युत्पद्यन्तेयुगागमे। यस्मिन्
गच्छन्ति कल्पान्तेसोऽहमात्मासदाव्ययः ॥४२॥

भा०—सृष्टि के प्रारम्भ में सर्व्व भूत जिससे उत्पन्न होते हैं। अरु महाप्रलय में जिसमें लीन होत हैं सो विकार रहित आत्मा मैं हूँ ॥ ४२॥

तत्वमस्यादिवाक्यानांल्लक्ष्यार्थोऽहमविक्रियः ।
परन्तत्वंयदाहुर्व्वैश्रुतयस्तदहम्परम् ॥ ४३ ॥

भा०—तत्वमस्यादि महावाक्यों का शुद्ध लक्ष्यार्थ मैं हूँ श्रुतियें जिसको कहती हैं परतत्व वह मैं हूँ॥ ४३ ॥

निर्म्मलोऽहन्निराकारस्सर्व्वव्यापीनिरञ्जनः ॥
सत्वमूर्त्तिरहंसाक्षीबुद्ध्यादीनाञ्जडात्मनाम् ॥४४॥

भा०—निर्म्मल मैं हूँ निराकार सर्व्व व्यापी निरंजन विष्णु मैं हूँ बुद्ध्यादि जड़ों का साक्षी मैं हूँ॥ ४४॥

प्राणिनान्नेत्रदेशेतुजागरे बैवसाम्यहम् ॥
विश्वरूपेणसर्व्वश्चप्रपञ्चोदृश्यतेमया ॥४५॥

भा०—पुनः सर्व्व प्राणियों के नेत्र देश में जागृदवस्था में मैं निवास करता हूं विश्वरूप मेरे करके सर्व्वप्रपञ्च देखे जाते हैं॥

कण्ठदेशेमनस्यन्तस्सम्यक्तिष्ठन्हितैजसः ॥
सूक्ष्मान्वैविषयान्स्वप्नेपश्यामिवासनामयान् ॥४६।

भा०—स्वप्नावस्था में प्राणियों के कण्ठदेशविषे हितनाड़ी में तैजस रूपसे सूक्ष्म विषयों को ज्ञानरूप नेत्रकरके देखता हूँ ॥ ४६॥

सुषुप्तौहृदयाकाशेप्रज्ञादीनामभावतः ॥
मयाप्रज्ञास्वरूपेणह्यानन्दोज्ञायतेतदा ॥४७॥

टी०—सुषुप्ति विषे बुद्ध्यादि के अभाव हुये पर हृदयाकाश विषे मेरे प्राज्ञस्वरूप करके तिसक्षण में आनन्द का अनुभव किया जाता है तथा च श्रुतिः सुख महमस्वाप्सन्नकिञ्चिद् वेदिषम्' आनन्द भुक्चेतोमुखः ॥ ४७ ॥ हरिः ओ३म् तत्सत् ॥

अज्ञानेविलयंयातेस्वाधिष्ठानेचिदात्मनि ॥
समाधौशुद्धबोधोऽहम्प्रतिष्ठामियथासुखम् ॥४८॥

टी०—अपने अधिष्ठानभूत चिदात्मा में अज्ञान के लीन होने पर समाधिकाल विषे सुख पूर्व्वक स्वस्वरूप का अनुभव करता हूं ॥ ४८ ॥

पञ्चीकृतमहाभूतजातम्प्रारब्धभुक्तये ।
स्थूलंसर्व्वविकाराढ्यन्तद्भिन्नोऽहमनश्वरः ॥४९॥

भा०—पञ्चीकृत महाभूतों से उत्पन्न प्रारब्ध कर्म्म भोगने के अर्थ स्थूल शरीर सर्व्व विकारों से युक्त उससे भिन्न नाश रहित मैं हूँ ॥ ४९ ॥

अपञ्चीकृतभूतेभ्योजातम्भोगादिसाधनम् ।
सूक्ष्मदेहञ्चमद्भिन्नं सत्यज्ञानस्वरूपतः ॥ ५० ॥

भा०—अपञ्चीकृत भूतों से उत्पन्न सुख दुःखादि भोगों का साधन सूक्ष्मदेह मेरे ज्ञान स्वरूप से भिन्न है ॥ ५० ॥

अनाद्यविद्यानिर्व्वाच्याकारणंयत्प्रकीर्तितम् ।
तद्भिन्नश्चेतनो हम्वैमय्यज्ञानम्वर्त्तते ॥ ५१ ॥

भा०—अनादि जो अज्ञान अनिर्व्वाच्य जो कारण शरीर कहा है तिससे भिन्न चेतन स्वरूप मैं हूं जिससे मेरे विषे अज्ञान नहीं है ।। ५१ ।।

अन्नादिपञ्चकोशेभ्यः पृथगात्मास्थितः सदा ।
अवस्थात्रयसाक्षिसत्यज्ञानादिरूपवान् ।।५२।।

भा०—अन्नादिपञ्चकोशों से पृथक् आत्मा सदा स्थित है। वह, तीनों अवस्थावों का साक्षीभूतसत्यज्ञानादिरूप वाला तथा चश्रुतिः ।। सत्यज्ञानमानन्दम्ब्रह्म ।। ५२ ।।

एवन्निरन्तराभ्यस्ताब्रह्माहञ्चेतिवासना ।
हरत्यज्ञानजान्दोषान्रोगानिवरसायनम् ।।५३।।

भा०—इस पूर्व्वोक्त प्रकार से निरन्तरअभ्यास की अहम्ब्रह्मास्मि यह वासना अज्ञान से उत्पन्न कर्त्तृत्वसुखित्वादि रूप दोषों का विनाश करती है जैसे श्रेष्ठ औषध रोगों को नाश करता है ।। ५३ ।।

सिद्धस्तदानस्वन्देहज्ञानातिब्रह्मणिस्थितः ।
आसनस्थम्भ्रमन्तम्वामदिरान्धोयथांशुकम् ।।५४।।

भा०—जिसक्षण में ब्रह्मनिष्ठ पुरुष ब्राह्मानन्दविषेस्थित होता है उसक्षण में आसन पर स्थित हुये वाभ्रमण करते हुये अपने शरीर को नहीं जानता है जैसे मदिरा के नशा से अन्धहुआपुरुष अपने वस्त्र को नहीं जानता है शरीर पर है वा नहीं ।। ५४ ।।

धियाचसंयोगवशाच्चिदात्मनः प्रतीयतेचे

तन्नताचजाड्यता । जाड्यात्करोमीतिवृथाविकल्प नासञ्जायतेऽथापिततोऽस्यसंसृति ॥ ५५ ॥॥

भा०—चिदात्मका बुद्धि के साथ संयोग होने से बुद्धि विषे चेतनता आत्माविषेजड़ता प्रतीत होती है जड़ता से मैं करता हूँ ऐसी मिथ्या कल्पना उठती है इससे इसको जन्म मरणादि रूप संसार भ्रमसा भासता है ॥ ५५ ॥

यदाहमात्मेतिविशुद्धधीर्भवेद्विवेकनिष्ठस्यजनस्यनैतदा । इपश्विनश्यत्यचिरेणदूषिकात्वज्ञामिधानैवपुनर्जनिष्यते ॥ ५६ ॥

भा०—जब मैं आत्मा हूँ ऐसी विशुद्ध बुद्धितत्वमस्यादि महा वाक्यों के विचारने से उत्पन्न होती है तब शीघ्र ही स्व स्वरूप का आच्छादन करने वाली यह अविद्याविनष्ट हो जाती है फिर नष्ट हुई संसारात्मक अविद्या उत्पन्न नहीं होगी इससे तत्व निष्ट पुरुष पुनः नहीं उत्पन्न होता तथा च श्रुतिः ॥ ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति ॥ शोकन्तरनिचात्मवित् ॥ इति ॥ ५६ ॥

ज्ञानम्परात्मात्मसुखैक्यबोधकन्निरूपितन्तद्द्विविधम्परोक्षकम् । चाद्यन्द्वितीयन्त्वपरोक्षकाभिधम्वेदान्तविद्भिरविवेकदूषकम् ॥ ५७ ॥

भा०—अब यहां ज्ञान का स्वरूप कहते हैं परमात्माजी वात्मा की एकता सुख से जिसमें जानी जाय वह ज्ञान कहाता है वह दो प्रकार का वेदान्तविदों करके कथित है पहिला परोक्ष कहा है यह ज्ञान अज्ञान का नाशक है ॥ ५७ ॥

दृष्टञ्छ्रुतंयद्धिजगत्स्वरूपं तद्ब्रह्मस्वच्छन्नतु तद्धिभिन्नम् ॥ परोक्षनाम्नाह्यभिधीयतेपरैर्ब्रह्माहमस्मीत्यपरोक्षसंज्ञकम् ॥ ५८ ॥

जो जगत् का स्वरूप नेत्रादि इन्द्रियों से और श्रुतिस्मृतियों से जो श्रुति स्वर्गादिक है वह सर्वशुद्ध ब्रह्म ही है तिससे भिन्न जगत् नहीं है तथाचश्रुतिः "सर्वंखल्विदम्ब्रह्म" इसी को श्रेष्ठ पुरुषों ने परोक्षज्ञान कहते हैं मैं ब्रह्म हूँ यह अपरोक्ष नामक ज्ञान साक्षात् मुक्ति का साधन है ॥ ५८ ॥

दृढेतुतस्मिन्नपरोक्षसंज्ञकेबोधेपरात्मैक्यस्वरूपलक्षणे । स्वरूपआनन्दमयेविराजतेमुनिस्तदानिश्चलवारसिन्धुवत् ॥ ५९ ॥

भा०—जीवात्मा परमात्मा के एकता बोधक तथा स्वरूप का लखाने वाला एवम्भूत तिस अपरोक्ष ज्ञान के दृढ़ हुये तिस दशा में ब्रह्मवित् पुरुष स्वरूपानन्द विषेशरत् काल के निश्चलसमुद्रवत् शोभता है ॥ ५९ ॥

यावद्धिवर्त्ततेलोकेप्रारब्धम्पूर्व्वदेहजम् ।
तावत्सेन्द्रियप्राणोऽयंदेहस्तिष्ठत्यकर्म्मणः ॥ ६० ॥

भा०—ब्रह्मवित्पुरुष जो कर्म्म सम्बन्ध रहित है उनका जब तक प्रारब्ध कर्म्म पूर्व्व देह से उत्पन्न स्थित रहता है तथाचश्रुतिः "तस्यतावदेवचिरंयावन्नविमोक्ष्येअथसम्पत्स्ये" उस पुरुष की तब तक स्थिति रहती है जब तक प्रारब्ध कर्म्म से छूटता नहीं प्रारब्ध कर्म्म के क्षय हुए विदेह कैवल्य होता है ॥ ६० ॥

त्रिविधँ प्रतिबन्धश्चपञ्चदश्यान्निरूपितः ।
आगामीवर्त्तमानश्चव्यतीतश्चतृतीयकः ॥ ६१ ॥

भा०—ज्ञान के प्रतिबन्ध कहते हैं जो पञ्चदशी में तीन प्रकार का प्रतिबन्ध कहा है आगामी १ वर्त्तमान २ व्यतीत ३ ॥ ६१ ॥

यावन्नास्यबिनष्टिस्स्यात्तावज्ज्ञानन्नजायते ।
प्रतिबन्धक्षयेज्ञानमुदेतिभवतारकम् ॥ ६२ ॥

भा०—जब तक इस प्रतिबन्ध का विनाश नहीं होता है तब तक ज्ञानोदय नहीं होता प्रतिबन्ध के क्षय हुये जन्म मरणरूप संसार तारने वाला ज्ञान उदय होता है यह शारीरिक सूत्र में स्पष्ट है "ऐहिकमप्यप्रस्तुतप्रतिबन्धेतदर्शनात्" सूत्रार्थः प्रतिबन्ध के अभाव हुये इसी जन्म में अपरोक्ष ज्ञान उदय होता है ॥ ६२ ॥

आगामीप्रतिबन्धश्चवामदेवे निरूपितः ।
तदभावेपरन्तत्त्वङ्गर्भेतिष्ठन्सज्ञातवान् ॥ ६३ ॥

भा०—आगामी प्रतिबन्ध वामदेव महर्षि विषे कहा हुआ है, वह एक जन्म में क्षीण हुआ है उसके क्षीण होने पर गर्भ ही में रहता हुआ आत्म स्वरूप को जाना है। श्रुतिः—गर्भए वैतच्छयानो वामदेवमुवाच ॥ ६३ ॥ शिवः ।

द्वितीयँ प्रतिबन्धश्चभरतेहिप्रकीर्त्तितः ।
क्षीणेतस्मिन्ननेकेनजन्मनाबुद्धवान्परम् ॥ ६४ ॥

भा०—दूसरा प्रतिबन्ध भरतराजर्षिविषे कहा है मृगस्नेह रूप उसके अनेक जन्म पर क्षीण हुए स्वस्वरूप को जाते हैं ॥ ६४ ॥

व्यतीतँप्रतिबन्धश्चराजन्येऽजेनिगद्यते ।
मृतदारकृतस्तेनतत्त्वन्नलब्धवानसौ ॥ ६५ ॥

भा०—व्यतीत प्रतिवन्ध मृतकस्त्रीकृत अजराजर्षि विषेकहा जाता है उस प्रतिवन्ध से वशिष्ठजी के उपदेश करने पर भी तत्व ज्ञान नहीं हुआ ॥ ६५ ॥

यदाव्रजतिनाशंहि प्रतिबन्धोविवेकिनाम् ।
तदातेपरमात्मानञ्ज्ञानन्त्येवनसंशयः ॥ ६६ ॥

भा०—जव मुमुक्षुपुरुषों के प्रतिउन्धका नाश हो जाता है तव वे लोग परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं ॥ ६६ ॥

अनेकजन्मसंस्कारात्सत्सङ्गँल्लभतेजनः ।
तंलब्ध्वास्वस्वरूपस्यज्ञानाययततेऽनिशम् ॥६७॥

भा०—अनेक जन्म के संस्कार से यह सांसारिक पुरुष सत्पुरुषों के सङ्ग को पाता है उसको प्राप्त होकर स्वरूप के साक्षात्कार वास्ते निरन्तर यत्न करता है ॥ ६७ ॥

प्रतिबन्धवशादेवयदाज्ञानन्नजायते ॥
तदासस्वर्गतिम्प्राप्यमोदतेबहुवत्सरान् ॥ ६८ ॥

भा०—प्रारब्ध कर्म्म रूप प्रतिवन्ध से यत्न करने पर भी ज्ञान नहीं होता है तव शरीर त्याग होने पर तपोवल से स्वर्ग को प्राप्त होकर वहुत वर्ष भोगों को भोगता है ॥ ६८ ॥

क्षीणपुण्यँपुनर्ल्लोकेजायते श्रीमतांगृहे ।

अथवायोगिनामेवगोत्रेवैलोकविश्रुते ॥ ६९ ॥

भा०—पुण्यक्षीण होने पर यदि सांसारिक भोगों की इच्छा रहती है तब श्रीमान् पवित्र पुरुषों के गृह विषे उत्पन्न होता है जब भोग की इच्छा नहीं रहती है तब योगियों के कुल में उत्पन्न होता है ॥ ६९ ॥

ईदृशञ्जननँय्यातिपूर्व्वाभ्यासाद्विचारवान् ।
तत्वज्ञञ्चोपसृत्याथपरन्तत्वञ्चपृच्छति ॥ ७० ॥

भा०—पूर्व्वजन्मकृत ब्रह्माभ्यास करके ऐसे श्रेष्ठ जन्म को प्राप्त होता है विचारवान् पुरुष वह श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य्य को प्राप्त हो कर तत्वज्ञान का प्रश्न करता है ॥ ७० ॥

कोऽहम्वैकुतआयातँ कुतोजातमिदञ्जगत् ।
एतदन्यच्चसर्व्वम्मेकृपयाब्रूहिविस्तरात् ॥ ७१ ॥

मैं कौन हूं कहां से आया हूं किससे यह जगत उत्पन्न है इस पूछे हुये प्रश्नों उत्तर को पुनः अन्य जानने योग्य अज्ञान नाशक यत्न को कृपा कर के विस्तार से मेरे वास्ते कहिये ॥ ७१ ॥

शुद्धबुद्धस्वरूपस्त्वंसर्व्वव्यापीनिरामयः ।
आत्मनश्चाविवेकेनजातोऽसित्वम्भवार्णवे ॥७२॥

भा०—गुरुशिष्य के प्रश्नों का उत्तर करता है। शुद्धज्ञान स्वरूप सर्व्वव्यापी जन्ममरणादिरूपरोगरहित तूं है अपने स्वरूप के अज्ञान से संसार में उत्पन्न हुआ है ॥ ७२ ॥

सच्चिदानन्दशुद्धस्यप्रतिबिम्बसमन्विता ।

प्रकृतिस्त्रिगुणाजाताद्विविधागुणभेदतः ॥ ७३ ॥

भा०—सच्चिदानन्द शुद्ध ब्रह्म के प्रतिविम्ब सहित निर्गुणात्मिका प्रकृति दो प्रकार की हुई सत्वादिगुणों के भेद से ॥ ७३ ॥

मायाऽविद्येतिसंज्ञेयंसत्त्वशुद्ध्यविशुद्धितः ।
साचमोक्षकरीबोद्धयासैवबन्धकरीमता ॥ ७४ ॥

भा०—माया अविद्या इस नामसत्व गुण के शुद्धि और अशुद्धि से वह माया मोक्ष देने वाली है और वन्ध करने वाली है विद्यारूप होकर अपने स्वरूप अविद्यारूप का नाश करके मोक्ष देती है अर्थात् अविद्या रूप से बंध करने वाली है ॥ ७४ ॥

मायायांपतितोविम्बईश्वराख्यं प्रकीर्त्तितः ।
ताम्मायांस्ववशीकृत्यसर्व्वज्ञत्वंय्ययावसौ ॥७५॥

भा०—माया विषेगिरा हुआ चित् प्रतिविम्ब ईश्वर नाम वाला हुआ उस माया को अपने अधीन करके सर्व्वज्ञता को प्राप्त हुआ है ॥ ७५ ॥

अविद्यावशगस्त्वन्यःतद्वैचित्र्यादनेकधा ।
जीवोभूत्वाव्रजत्यस्मिन्भवेरूपाऽविवेकतः ॥ ७६ ॥

भा०—अविद्याविषेगिरा हुआ चिद्रूप अविद्या वश हुआ अविद्या के विचित्रता से अनेक रूप हुआ जीवसंज्ञक इस संसार विषे स्वरूप अज्ञान से आता है ॥ ७६ ॥

अज्ञमाश्रित्यलोकेऽस्मिन्कर्म्माणिचानुतिष्ठति ।
सदसन्मिश्ररूपाणिसात्विकादिविभेदतः ॥ ७७ ॥

भा०—शरीरका आश्रय करके सात्विकादि भेद से जो तीन प्रकार का कर्म्म है सात्विक राजस तामस उन कर्म्मों को करता है। ॥ ७७ ॥

सात्विकात्स्वर्ग्गंयातिराजसाद्वैचमध्यमाम् ।
दुर्ग्गतिन्तामसाद्यातिचेत्थमायातियाति च ॥७८॥

भा०—सात्विक कर्म्म से स्वर्ग्ग को प्राप्त होता है राजसकर्म्म से मध्यमा अर्थात् मनुष्य लोक को प्राप्त होता है तामस कर्म्म से दुर्ग्गति अर्थात् अगति को प्राप्त होता है इस प्रकार से आता है पुनः जाता है तथा च श्रुतिः पुण्येन पुण्यलोकन्नयति पापेन पापमुभाभ्या-म्मनुष्यलोकम् ॥ ७८ ॥

निवर्त्ततेनतावद्वैमिथ्याभूताचसंसृतिः ।
यावन्नजायतेज्ञानंस्वरूपस्यचिदात्मनः ॥ ७९ ॥

भा०—मिथ्याभूत भी जगत् तब तक नहीं निवृत्त होता है जब तक चिदात्मा के रूप का ज्ञान नहीं होता है ॥ ७९ ॥

गलस्थञ्चयथानिष्कम्भ्रान्त्यानज्ञायतेऽबुधै ।
एवम्ब्रह्मस्वदेहस्थन्नजानातिजनोऽबुधः ॥ ८० ॥

भा०—जैसे कण्ठगत सुवर्ण भूषण को भ्रान्त हुआ पुरुष नहीं जानता है ऐसे अज्ञानी पुरुष अपनेदेह विसेस्थित ब्रह्म को नहीं जानता है ॥ ८० ॥

शैवालाच्छादितन्तोयंयथाहित्वामृगोऽबुधः ।
मरीचिसलिलँय्यातिपिपासाकुलचेतसा ॥ ८१ ॥

भा०— जैसे शेवार से ढके हुये जल को अ॰मृगत्याग कर पिपासा से व्याकुल हुआ चित्त से मृगतृष्णा जल प्रति दौड़ता है ।।

तथाऽज्ञानेनसञ्छन्न स्वरूपम्परमात्मनः ।
परित्यज्यजनोमूढोबिषयान्यातिवैविषम् ।। ८२ ।।

भा०—तैसे अज्ञान से आच्छादित परमात्मा के स्वरूप को त्याग कर अविवेकी जन विषरूप विषय का सेवन करता है ।। ८२ ।।

स्वरूपबोधशोभनम्विहायरत्नकोपमम् ।
गृहीतवानयञ्जनस्सुकाञ्चदृश्यकाभिधम् ।।
यदात्वनेकजन्यसुविवेकयोगयुक्तितस्स्वरूप-
ज्ञानमाप्यतेतदैवशर्म्मलभ्यते ।। ८३ ।।

भा०—अमूल्यरत्न के समानस्वस्वरूपज्ञान रमणीय को त्याग कर सांसारिक जनकाञ्च रूप दृश्य भ्रम का ग्रहण किया जव अनेक जन्मों विवेक अष्टाङ्ग योग श्रौत युक्त करके स्वरूप का साक्षात्कार करता है तव परमानन्द को प्राप्त होता है ।। ८३ ।।

यदात्वसत्प्रसङ्गतोह्यनर्थभोगमीहते भवप्रभा वतृष्णयातदैतिदुर्ग्गतिन्नरः ।। अतोमुमुक्षुभिर्न्नरै परात्मप्राप्तिकाम्यया विवेकिनांहिसङ्गतिर्विधीय-तामजस्त्रकम् ।। ८४ ।।

भा०—जव दुष्ट पुरुष के सङ्ग से अनर्थ शव्दादि विषयों का इच्छा करता है तव जन्म मरणरूप संसार का देने वाली तृष्णा

करके नरकादि दुःखों प्राप्त होता है इससे मुमुक्षु पुरुषों को परमात्मा के प्राप्ति के इच्छा से विवेकी पुरुषों की सङ्गति सदैव करना चाहिये। ॥ ८४ ॥

कामयन्तेजनाभोगान्पुत्रदारादिलक्षणान्।
येते वैसततम्मृत्यो पाशङ्गच्छन्तिकामुकाः॥

भा०—सांसारिक जन पुत्रदारादि रूप सांसारिक भोगों की इच्छा करते हैं वे कामी पुरुष निरन्तर जन्म मरण के पाशको प्राप्त होते हैं॥ ८५॥

येऽध्रुवेष्वध्रुवान्कामान्नेच्छन्ति शुद्धमानसाः।
तेयान्तिपरमात्मानम्परमानंदविग्रहम्॥ ८६॥

भा०— निर्विषयचित्त वाले जो अनित्य संसार विषे अनित्य शब्दादि विषयों की इच्छा नहीं रखते हैं वे लोग परमात्मा को प्राप्त होते हैं॥ ८६॥

येनरूपंरसंगन्धंशब्दान्स्पर्शाञ्श्चमैथुनम्।
बुद्ध्यन्तेऽबिरतंल्लोकांस्तन्नपश्यन्त्यबुद्धयः॥८७॥

भा०—जिस करके रूपरस गन्ध शब्दस्पर्श आदिकों सदा जाना जाता है उस परमात्मा को अज्ञानी पुरुष नहीं जानते हैं।॥८७॥

मनसायोगशुद्धेनप्राप्यम्ब्रह्मश्रुतिर्जगौ।
कामासक्तेनतेनैवनरस्संयातिसंसृतिम्॥ ८८॥

भा०—शुद्धचित्त करके ब्रह्मप्राप्त होने योग्य हैं ऐसाश्रुति ने कहा है विषयासक्तचित्त करके पुरुष संसार को प्राप्त होता है॥ ८८॥

वैराग्याभ्यासयोगेननिष्कामेणचकर्म्मणा।
ध्यानेनसततंय्योगीमानसंस्ववशन्नयेत्॥ ८९॥

वैराग्य से अभ्यास करके अष्टाङ्ग योग करके निष्काम कर्म्म करके आत्मध्यान करके आत्मयोग युक्त पुरुष चित्त को अपने वश करैं। ८९

यथेदम्विषयासक्तश्चित्तंहिक्रियतेनरैः॥
तथाऽस्मिन्परमानन्देदुर्भ्भाग्यान्नीयतेनतत्॥ ९०॥

भा०—जैसे सांसारिक पुरुषों ने शव्दादि विषयों में चित्त को आसक्त करते हैं तैसा परमानन्दस्वरूपविषे अभाग्य वश नहीं लगते हैं॥ ९०॥

समाधिधौतदोषस्यब्रह्मण्यावेशितस्यच।
यत्परञ्जायतेसौख्यन्तद्वक्तुङ्नशक्यते॥ ९१॥

भा०—समाधि करके नष्ट हुआ है अविद्यादि मल जिनके ब्रह्मानन्द विषे स्थितचित्त का जो परमनन्द प्राप्त होता है उसका कौन वर्णन कर सक्ता है॥ ९१॥

लयाद्विक्षेपतश्चैवनिरुध्यमानसम्मुनिः।
आत्मन्येवात्मनातुष्टोजीवन्मुक्तदशाम्व्रजेत्॥ ९२॥

भा०—लय और विक्षेप से चित्त का निरोध करके अपने स्वरूपविषे शुद्ध चित्त से प्रसन्न हुआ जीवन्मुक्तपुरुषों की दशा को प्राप्त होता है॥ ९२॥

यथानिरिन्धनोवन्हिस्स्वयोनौलयमृच्छति।

एवम्वृत्तिंक्षयाच्चित्तं स्वाधिष्ठानेविलीयते ॥ ६३ ॥

भा०—जैसे इन्धन से रहित अग्नि अपने कारण तेज विषे लीन होती है ऐसे हीं सात्विकादिवृत्तियों के क्षय हुये चित्तअपने अधिष्ठान शुद्ध चेतन विषे लीन होता है ॥ ६३ ॥

चित्तस्यैवप्रसादेनहन्तिदोषमनर्थकम् ।
श्रुतिरप्याहतस्माद्धि स्थान्तस्यशोधनन्तपः ॥ ६४ ॥

भा०—चित्तके प्रसन्नता से पुरुषमलविक्षेपादि दोषों का नाश करता है श्रुति भी ऐसा कहती है "चित्तस्यैवप्रसादेनहन्तिकर्म्म शुभाऽशुभम्" तिससे चित्तशुद्धिरूप परम तप है ॥ ६४ ॥

युक्तेनमनसायस्तुयुक्तोहिज्ञानवान्नरः ।
तस्येन्द्रियाणिवश्यानिसदश्वाइवसारथेः ॥ ६५ ॥

भा०—जो निर्विषय चित्त से युक्त ज्ञानवान् पुरुष है तिनके इन्द्रिय वश रहती हैं जैसे अच्छे घोड़ेसारथी के वशरहते हैं ॥ ६५ ॥

अपक्वमानसेनैवयुक्तोयस्सततञ्जनः ।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानिदुष्टाश्वाइवसारथेः ॥ ६६ ॥

भा०—विषयासक्तचित्तसे जो युक्त निरन्तर रहते हैं उनकी इन्द्रियां वशीभूत नहीं रहती हैं जैसे दुष्टघोड़े सारथी के वश नहीं रहते हैं ॥ ६६ ॥

विज्ञानरहितोयस्तुविषयाऽकृष्टमानसः ।
नसतत्पदमाप्नोतिसंसारञ्चातिगच्छति ॥ ६७ ॥

भा०—जो अविवेकी है विषयासक्त चित्तवाला वह ब्रह्म पद के नहीं प्राप्त होता है वह संसार को प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥

वैराग्यकुशलोयस्तुहृषीकार्थपरांमुखः ।
सएवम्परमाप्नोतियस्माद्भूयोनजायते ॥ ६८ ॥

भा०—जो वैराग्य संपन्नपुरुषशव्दादि विषयों से रहित है सोनिश्चय करके परम पद को प्राप्त होता है श्रुतिः ॥ सोऽध्वनः परमाप्नोति यस्माद्भू योनजायते” श्रुत्यर्थ” वह पुरुष संसार सागर के पारको प्राप्त होता है जिससे से पुनः उपजता नहीं हैं तथाचश्रूतिः” नसपुनरावर्त्तते ॥ ६८ ॥

सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरोह्यात्मालभ्योऽयंसूक्ष्मयाधिया ।
दृश्यतेत्वग्रयाबुद्ध्याश्रुतिरेषासनातनी ॥ ६९ ॥

भा०—आत्मासूक्ष्मतम आकाशादिसे भी अति सूक्ष्म है वैराग्यादि साधनों से युक्त श्रेष्ठ वुद्धि से प्राप्त होने योग्य हैं श्रेष्ठ बुद्धि से देखा जाता है यह सनातनी श्रुति है ॥ ६६ ॥

महतोऽपिमहानात्मागुहायांसंप्रतिष्ठते ।
वीतशोकास्त्वकर्म्माणोयम्पश्यन्तिविवेकिनः ॥१००

भा०—पृथिव्यादि स्थूल वस्तुओं से बड़ा है सो सर्व्व प्राणियों के हृदयाकाश में स्थिर रहता है विगत हो गया शोक जिनके ऐसे शुभाऽशुभ कर्म्म रहित जो विज्ञानवान् पुरुष हैं वे लोग जिसको देखते हैं ॥ श्रुतिः ॥ तंमक्रतुम्पश्यति वीतशोकः ॥ १०० ॥

असङ्गोऽयञ्चिदात्माहिचासङ्गोऽयमितिश्रुतेः ।

चेतनस्सर्व्वसाक्षीचचेतास्साक्षीतिवैश्रुतेः॥१०१॥

यह चेतन आत्मासङ्गरहित है "असङ्गोयम्पुरुषः" इसश्रुति प्रमाण से पुनः चेतन स्वरूप सर्व्वप्राणियों का साक्षी है "चेतास्साक्षी केवलोनिर्गुणश्च ॥१०१॥

सत्यंज्ञानस्वरूपञ्चसत्यंज्ञानमितिश्रुतेः।
नलिप्यतेकर्म्मणेतिश्रुत्याचेदमकर्म्मकम् ॥१०२॥

भा०—सत्य स्वरूप ज्ञानस्वरूप ब्रह्म हैं "सत्यंज्ञानमानन्दम्ब्रह्म इस श्रुति" "नलिप्यतेकर्म्मणापापकेन" इसश्रुति से यह आत्माकर्म्मसम्वन्ध रहित है॥ १०२॥

इन्द्रियाणिचसर्व्वाणिसान्तःकरणकानिच।
स्वकीयार्थेषुवर्त्तन्तेयमाश्रित्यसवैपरः॥ १०३ ॥

भा०—अन्तःकरण सहित सर्व्व इन्द्रियें अपने २ अर्थों में वर्त्तमान हो रही हैं जिसके आलम्बन से सोई पर पुरुष है॥१०३॥

आत्मानमनसाक्वापिमनुतेज्ञानरूपवान्।
सदातेनमनश्चेदम्मनुतेज्ञानरूपिणा॥ १०४ ॥

भा०—जड़ स्वभाव वाले मन से यह आत्मा सङ्कल्प विकल्प नहीं करता क्यों कि ज्ञानस्वरूप है तिस ज्ञान स्वरूप परमात्मा करके मनसङ्कल्पादि करता है ॥१०४॥

ज्ञानचक्षुःपरम्ब्रह्मचक्षुषानैवदृश्यते।
तेनेदञ्चक्षुरेतद्धिरूपंश्रोतादिपश्यति॥ १०५ ॥

भा०—यह परब्रह्म ज्ञानरूप नेत्र वाला है चक्षुरिन्द्रिय करके रूपको नहीं देखता है उसके सत्ता से यह नेत्र इन्द्रिय श्वेतादि रूप को देखती है । ।। १०५ ।।

श्रोत्रेणनचवैशब्दंशृणोतिपरमोविभुः ।
तेनेदंसततञ्छ्रोत्रंसर्व्वंशब्दंशृणोतिच ॥१०६॥

भा०—यह विभुश्रोत्र से शब्द को सुनता नहीं है किन्तु उसी के सत्ता से यह श्रोत्र इन्द्रिय निरन्तर सर्व्व शब्दों को सुनता है । ,

घ्राणेननचगृह्णातिसौरभ्यसुरभीप्रभुः ।
घ्राणन्तेनैवजनातिगन्धरूपम्पृथक् पृथक् ॥ १०७

भा०—व्यापक आत्मानासिका इन्द्रिय से सुगन्ध दुर्गन्ध को नहीं ग्रहण करता है उसी के सत्ता से नासिका इन्द्रिय पृथक् पृथक् गन्ध को जानता है ।। १०७ ।।

वाचावक्तिनवैशब्दान्येनवावक्तिचात्मना ।
तमात्मानम्परंज्ञात्वावीत शोकस्सुखीभव ॥ १०८॥

भा०—यह आत्मा वाणी से शब्दों को उच्चारण नहीं करता है किन्तु जिस आत्मा करके वाणी इन्द्रिय भाषण करता है उस परात्मा को जान कर शोक से रहित होवो ।। १०८ ।।

एतस्माज्जायते प्राणोमनस्सर्व्वेन्द्रियाणिच ।
खम्वायुर्ज्योतिरापश्चपृथ्वीविश्वस्यधारिणी ॥

भा०—इस परमात्मा से प्राण उत्पन्न होता है मन सर्व्व

इन्द्रियें आकाशवायु अग्निजल सर्व्वजगत् के धारण करनेवाली पृथ्वी उत्पन्न होती है ॥ १०६ ॥

ब्रह्मादिस्थावरान्तञ्चजगत्सर्व्वञ्चराचरम् ।
आत्मजातन्नचान्यस्मादितिवेदान्तनिश्चयः । ११०

ब्रह्मादिस्थावरान्त सर्व्वचराचर जगत् आत्मा से उत्पन्न हुआ है अन्य से नहीं यह वेदान्त का निश्चय है ॥ ११० ॥

तस्माद्वेतिश्रुतेरेतद्विश्वञ्जातम्परात्मनः ।
अतञ्चेतिचमन्त्रेणब्रह्मैवसर्व्वकारणम् ॥ १११ ॥

भा०— "तस्माद्वाएतस्मा दात्मन आकाशस्सम्भूतः" इस श्रुति से भी सर्व्वजगत् परमात्मा से उत्पन्न हुआ है यह सिद्ध हुआ है अतञ्चेत्यादिमन्त्र से भी ब्रह्म ही सर्व्व जगत् का कारण निरूपित है ॥ १११ ॥

निरूपितन्नतद्भिन्नङ्कारणंदृश्यतेक्वचित् ॥
यतोवेत्यादिवाक्येनतदुक्तम्विश्वकारणम् ॥११२॥

भा०—तिससे भिन्नकारण नहीं देखा जाता है "यतोवाइमानि भूतानि जायन्ते" इस श्रुतिवाक्य से सर्व्व जगत्कारण ब्रह्म ही प्रतिपादित है ॥ ११२ ॥

आत्मावेत्यादिवाक्येनब्रह्मैवसर्व्वकारणम् ॥
विनिश्चितन्तिरस्कार्य्यम्परमाण्वादिकल्पनम् ॥११३॥

भा०—आत्मावाइदमग्र आसीत् इत्यादि श्रुति वाक्य करके सर्व्वजगत् का कारण निश्चय करके ब्रह्म ही विनिश्चित है इससे

परमाणु इत्यादि की कारणता त्यागने योग्य है। नैयायिकपरमाणु से सृष्टिमानते है परन्तु उनका सिद्धान्त व्यभिचारीत है अतः अव उनका खण्डन वेदान्त वाक्यों से सिद्ध हुआ।। ११३।।

प्रधानकारणंयत्तु साङ्ख्यशास्त्रेणवर्णितम् ।।
श्रुतियुक्तिविहीनत्वान्नादृत्तं व्यम्विपश्चिता ।११४।।

भा०—संख्यशास्त्र करके प्रधान जगत् का कारण वर्णित है श्रुति युक्ति विरुद्ध होने से विद्वान पुरुष करके नहीं आदर करने योग्य है।। ११४।।

जगत्कारणतायेयंसर्व्वज्ञेसच्चिदात्मनि ।।
कल्पिताश्रुतिभिस्सैवमूढानान्तत्वज्ञापिका ।।११५।।

भा०—जो सर्व्वं सच्चिदातमा विषे यह जगत् कारणता श्रुतियों से कल्पित है सो निश्चय करके अज्ञानी पुरुषों के स्वरूप के जानने योग्य है ।। ११५।।

द्विविधाकल्पनाप्रोक्तावेदशास्त्रार्थबोधकैः ।।
अर्थदाऽनर्थदाचेतिग्राह्यात्याज्यामनीषिभीः ।। ११६

भा०—वेदशास्त्र के अर्थ को जानने वाले पुरुषों करके दो प्रकार की कल्पना कही गई है एक अर्थ देने वाली दूसरी अनर्थ देने वाली है पहिली ग्रहण करने योग्य है दूसरी त्याग करने योग्य है।। ११६।।

कारणम्वै पदेतस्यब्रह्मणैवश्रुतिकल्पितम् ।।

तदेवकल्पनंश्रेष्ठमज्ञानक्लेशनाशनम् ॥ ११७ ॥

भा०—इस जगत् का कारण ब्रह्म ही निश्चय करके श्रुतियों से कल्पित हैं यह कल्पना श्रेष्ठ है अज्ञान क्लेश का नाशकरने वाली है ॥ ११७ ॥

असर्प्पभूतेरज्ज्वादौयथासर्पादिभावना ॥
अनर्थाशास्त्रकारैश्चवर्णिताकल्पनाऽपरा ॥ ११८ ॥

भा०—जैसे सर्प्प भिन्नरज्ज्वादि में सर्प्पादि की भावना होती है यह अनर्थ नाम वाली अपर कल्पना शास्त्रकारों से वर्णित है।

अद्वयादात्मतत्वस्यशुद्धस्यसर्व्वगस्यच ।
कार्य्यकारणयोरत्रप्रतीतिर्न्नहिदृश्यते ॥ ११९ ॥

शुद्धसर्व्वगत आत्मतत्व के अद्वय होने से इस अद्वय आत्मा विषेकार्य्य कारण की प्रतीति नहीं होती है श्रुतिः । नन्वेकमेवाद्वितीयम् ॥ ११९ ॥

नतद्भिन्नञ्जगत्किञ्चिद्वर्त्ततेचेतिदृश्यताम् ।
इत्थन्नित्यविचारेणजननादिविनश्यति ॥ १२० ॥

भा०—कार्य्य कारण के अभाव होने से ब्रह्म भिन्न जगत् किञ्चिन्मात्र नहीं ऐसा देखने योग्य है इस प्रकार निरन्तर विचार करके ज्ञानोदय होने से जन्म मरणादिका विनाश होता है ॥ १२० ॥

उपदेशमिमँल्लब्ध्वागुरोस्सर्व्वार्थदर्शिनः ।
श्रुत्यायुक्तयाविचिन्त्यैवपरन्तत्वंसुखीभवेत् ॥ १२१

सर्व्वार्थदर्शिब्रह्मनिष्ठ गुरुसे इस उपदेश को पाकर श्रुति युक्ति से आत्मतत्वको विचार कर सुखी होवै॥ १२१॥

नलभ्यश्श्रवणायात्माबहुभिः प्राकृतैर्जनैः।
शृण्वन्तोऽपिचतत्त्वंहिनविदन्तितथाऽऽपरे॥ १२॥

भा०—बहुत से विषयासक्त पुरुषों को आत्मा का श्रवण नहीं होता है तैंसे अपर पुरुष आत्मा श्रवण करता हुआ भी आत्मा को नहीं जानता है तथाचश्रुतिः श्रवणायापि वहुभिर्य्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि वहवोयन्नविद्युः॥ १२२॥

विज्ञायकेचिदात्मानंसंशयाविष्टमानसाः।
भवन्तिचात्रलोकेहिदुर्ल्लभाब्रह्मवादिनः॥ १२३॥

भा०—कोई पुरुष आत्मा को जानकर संशययुक्तचित्त होते हैं अपने अज्ञान करके इस लोक में ब्रह्मज्ञ दुर्ल्लभ है॥ १२३॥

अविद्याग्रस्तबोधेनगुरुणाचानुशिक्षितः॥
परन्तत्वन्नजानातिदर्व्वीपाकरसंयथा॥ १२४॥

भा०—अविद्या करके आच्छादित है ज्ञान जिनके ऐसे गुरु करके सिखाया हुआ आत्मतत्व को नहीं जाता है जैंसे करछुलि पाकके रसकोनहीं जानती है॥ १२४॥

तपोभिः क्षीणदोषेणतत्त्वज्ञेनचवैपुमान्॥
शिक्षितः परमाप्नोतिसततञ्चात्मचिन्तनात्।

भा०—तप कर नष्ट हुआ है सम्पूर्णपाप जिनके ऐसे ब्रह्मज्ञ श्रोत्रिय गुरु से शिक्षा पाया हुआ पुरुष परमात्मा को प्राप्त

होता है निरन्तर आत्मस्वरूप के निदिध्यासन से।। १२५।।

मनोब्रह्मेतिवाक्येनमनोब्रह्मनिरूपितम् ॥
उपासनायतद्बोध्यम्विवेकरहितस्यच ॥ १२६ ॥

भा०—मनोब्रह्मेत्युपासीत "इस श्रुतिवाक्य से मन ब्रह्म कहा है स्वस्वरूप ज्ञान रहित पुरुष के उपासना वास्ते उसको जानना।। १२६।।

मनसोनापिचात्मत्वमहङ्कारविकारतः ॥
आत्मत्वन्नचवैबुद्धेः प्रकृतेर्विकृतिर्हिसा ॥१२७॥

भा०—मन ब्रह्म नहीं है अहङ्कार के विकार होने से श्रुतिः "अप्राणोऽह्यमनाश्शुभ्रः पुन" बुद्धि भी आत्मा नहीं है प्रकृति का विकृति होने से।। १२७।।

वायोर्विकारभूतस्यप्राणस्यैवनचात्मता ॥
उपाधिरहितश्चायमक्षरः प्रकृतेः परः ॥१२८॥

भा०—वायुके विकार भूतव्यष्ट्यात्मक प्राणवायु भी आत्मा नहीं है यह पूर्व्वोक्त श्रुति से सिद्ध हुआ हैं सर्व्वोपाधि रहित प्रकृति से परे यह अक्षर ब्रह्म है तथाचश्रुतिःअक्षरात्परतः।। १२८।।

नजायतेकदाचिद्वैम्रियतेवानकर्हिचित् ॥
नस्त्रीपुमान्नषण्ढोवानबालोनापिनैयुवा ॥ १२९ ॥

भा०—आत्मा कभी उत्पन्न नहीं होता है न कभी मरता है न स्त्री हैं न पुरुष है न नपुंसक है न बालक है न युवा है तथा श्रुतिः "नवैस्त्रीनपुमानेषनचैवायन्नपुन्सकः"

एकआत्माऽद्वितियोऽसौनेहनानास्तिकिञ्चन ॥
नित्योऽयंसुखदुःखादिसम्बन्धोनाऽत्रवर्त्तते ॥१३०

भा०—यह आत्मा एक कहीं अद्वितीय है अद्वितीय कहीं स्वगतस्वजातीय विजातीय भेद रहित है "नन्वेकमेवाद्वितीयमिति श्रुतेः" इस आत्माविषेकिंचिन्मात्र भी नानात्व नहीं है। "नेहनानास्तिकिञ्चनेति" श्रुतेः यह आत्मा नित्य कहीं सदा एक रस है नित्योनित्यानामिति श्रुते इस आत्माविषे सुख दुःखादिका सम्बन्ध नहीं है "सत्यंज्ञानमानन्दम्ब्रह्म'तिश्रुतेः ॥ १३० ॥

अजन्मनस्तुभावस्यजनिमिच्छन्तिवादिनः ॥
जन्मादिरहितोभावोजायतेवकथम्वद ॥ १३१ ॥

भा०—जन्मादि रहित भाव के वादीजन जन्म की इच्छाकरते हैं जन्मादि रहित भाव कैसे उत्पन्न होता है सो कहो ॥ १३१ ॥

नायञ्जातोबिभुः पूर्बम्भविताबानवैपुनः ॥
अजोनित्यश्शाश्वतोऽयम्पुराणइतिवैश्रुतेः ॥ १३२ ।

यह व्यापक आत्मा पूर्व में उपजता नहीं है न पुनः आगे उपजैंगा यह आत्मा जन्मरहित नित्य प्राचीन है शाश्वत् कहीं त्रिकालाबाध्य है इस श्रुति से आत्मा का जन्मादिनहीं सिद्ध होता है ॥ १३२ ॥

पृथिव्यादिमहाभूतसंघातेयावदात्मता ॥
संसारस्तावदेवस्यात्परस्यद्रष्टुरात्मनः ॥ १३३ ॥

भा०—जब तक पृथिव्यादि महाभूत रचित स्थूल शरीर

विषे आत्म बुद्धि है तब तक इस द्रष्टा आत्मा पुरुष को संसार है

मिथ्याभूतोहिसंसारोनाज्ञानाद्धिनिवर्त्तते ॥
विषयान्ध्यायमानस्यस्वप्नेऽनर्थागमोयथा ॥१३४॥

भा०—मिथ्याभूत संसार है तथापि स्वस्वरूप के अज्ञान से निवृत्त नहीं होता है जैसे जागृत् कालविषे स्त्री पुत्रादि नाना विषयों के चिन्तन करने वाले पुरुषों को निद्रा से स्वप्न में स्त्री पुत्रादि का मरण होना तथा अपना इत्यादि नाना प्रकार के अनर्थ प्राप्त होते हैं॥ १३४॥

ऋतन्तावदिदम्भातियावन्नज्ञायतेपरम् ॥
परेतत्वेचसंज्ञातेस्वप्नवद्भात्यपार्थकम् ॥ १३५ ॥

भा०—तब तक यह जगत् सत्य भासता है जब तक पर ब्रह्म स्वरूप का ज्ञान नहीं होता है परब्रह्म का ज्ञान हो जाने पर स्वप्न के समान मिथ्या भासता है॥ १३५॥

यथामृदिघटादिश्चकल्पितोह्यविवेकतः ॥
तथाशुद्धे चिदानन्दे विश्वं कल्पितमज्ञकैः ॥१३६॥

भा०—जैसे अन्धकार से रस्सी में सर्प्प की प्रतीती होती है ऐसेचिद्रूप आत्माविषे सर्व्व जगत् प्रतीत होता है॥ १३६॥

यथाशुद्धे महाकाशेकल्पिताजलदाऽवलिः ॥
एवंस्वच्छेपरेज्ञानस्वरूपेविश्वकल्पना ॥ १३७ ॥

जैसे महाकाश विषे मेघों का समूह कल्पित है तैसे शुद्ध उत्कृष्ट ज्ञान स्वरूपविषे जगत् की कल्पना है॥ १३७॥

यथाशुक्तौभ्रमादेवरजतम्प्रतीयते ।
तथाशुद्धस्वरूपेऽस्मिञ्जगत्भातिविनश्वरम् ॥ १३८ ॥

भा०—जैसे सीपीविषे भ्रम से चांदी प्रतीत होती है तैसे शुद्ध स्वरूप आत्माविषे नाशधर्म्म वाला भ्रम से जगत् भासता है। १३८।

यथास्थाणौतुभ्रान्त्यैवमानवँकल्प्यतेऽबुधैः ॥
तथासत्येऽव्ययेचैतद्विश्वम्पश्यन्त्यबुद्धयः ॥ १३९ ॥

भा०—जैसे खम्भविषे भ्रान्ति से अज्ञ पुरुषों करके मनुष्य की कल्पना होती है तैसे शुद्ध निर्विकार आत्माविषे अज्ञानी पुरुष इस जगत् को देखता है॥ १३९ ॥

कनकेकुण्डलञ्चैवयथाभ्रान्त्यविवेकतः ॥
एवमात्मनिसद्रूपेविश्वम्भातिगुणात्मकम् ॥ १४० ॥

भा०—जैसे सुवर्ण विषेकुण्डल भ्रम से भासता है ऐसे ही सत्य-स्वरूप आत्माविषे त्रिगुणात्मक जगत् भासता है ॥ १४० ॥

यथातोयेतरङ्गाश्चदृश्यन्तेह्यविवेकिभिः ।
एवंज्ञानमयेशुद्धेविश्वन्दृश्यतेऽबुधैः ॥ १४१ ॥

भा०—जैसे जल में अज्ञ पुरुषों करके तरङ्ग दृष्ट होते हैं ऐसे ही ज्ञान मय शुद्ध ब्रह्म विषे अज्ञ पुरुषों करके जगत् देखा जाता है॥ १४१ ॥

यथाशुद्धमणौनीलपीतादिर्नौप्रकल्पितम् ।
एवम्ब्रह्मणिसर्व्वज्ञे कल्पितं सकलञ्जगत् ॥ १४२ ॥

भा०—जैसे शुद्ध मणि विषे नीलपीतादिकी प्रतीति होती है ऐसे ही सर्व्वज्ञ ब्रह्मविषे सर्व्वजगत कल्पित है॥ १४२॥

प्लवेनगच्छतं पुंसस्सर्व्वम्भातिविपर्य्ययम्।
एवमात्मनिदेहत्वम्भातिचाज्ञानयोगतः ॥१४३॥

भा०—जैसे नौका करके गमन करते हुये पुरुष को सर्व्व विपर्य्यय भासता है ऐसे ही अज्ञान से आत्माविषे देह भासता है।

भ्रमद्भ्याञ्चैवचक्षुर्भ्यान्दृश्यंभातिसुचञ्चलम्।
एवम्भ्रान्तयाबुद्ध्याचात्माभातिविनश्वरः॥१४४॥

भा०—जैसे चञ्चल नेत्रों से जगत् भ्रमता हुआ भासता है ऐसे ही अज्ञान युक्त बुद्धि से आत्मा मरणादि धर्म्म वाला भासता है॥ १४४॥

मरीचिसलिलेयद्वत्तोयञ्चाभातिवैमृषा।
तद्वदात्मनिदेहत्वमज्ञानाद्भातिशोकद् ॥ १४५ ॥

भा०—जैसे मृगतृष्णा जल में मिथ्याही भासता है ऐसे ही आत्माविषे शोकदेने वाला देह अज्ञान से भासता है॥ १४५॥

यद्वदग्नौमणित्वञ्चमणौवाऽग्निं प्रतीयते।
तद्वदात्मनिनित्येऽस्मिन्प्रतीतंसकलञ्जगत् ॥ १४६

भा०—जैसे अग्नि में मणि की प्रतीति होती है मणि विषे अग्नि की प्रतीति होती है उसी प्रकार इस नित्य आत्मा विषे जगत् सम्पूर्ण भासता है॥ १४६॥

प्राच्यादीनाञ्चकाष्ठनाम्विपरीतगतिर्य्यथा ।
भ्रमात्तद्वत्परानन्दस्वरूपस्याऽन्यथागतिः ॥१४७॥

भा०—जैसे पूर्व्वा दिशाओं की दिग्भ्रमें विपरीत गति होती है ऐसे ही परमानन्द स्वरूप का भ्रम से जीवभाव भासता है ॥ १४७॥

वारिवाहेषुधावत्सुचञ्चलोदृश्यतेशशी ।
यथातद्वच्छरीरेऽस्मिन्व्यापृतेव्यापृतं पुमान । १४८

भा०—जैसे मेघों के गमन से चन्द्रमा चञ्चलसा भासता है तैसे इस शरीर के व्यापारवान् होने से आत्मा व्यापारी भासता है॥ १४८॥

चक्षुषादृश्यतेयत्तुश्रोत्रेणश्रूयतेचयत् ।
सर्व्वन्तद्ब्रह्मनिर्व्वाणस्वरूपम्विद्धिनाऽन्यथा १४९

भा०—नेत्र से जो देखा जाता है और कर्ण से जो सुना जाता है उन सबको शुद्ध ब्रह्म जानो उससे भिन्न नहीं ॥ १४९॥

परानन्दस्वरूपपेचसंज्ञातेतत्त्वविन्मुनिः ।
स्वरूपेस्वे चिदानन्देतदातिष्ठतिशान्तधीः ।१५०।

भा०—परमानन्द स्वरूप के ज्ञान हुये ब्रह्मवित् पुरुष तिस दशा में स्वरूप विषे शान्त बुद्धि हुआस्थित होता है॥ १५०॥

विमोहमानमत्सरोगतैषणोविशुद्धधीः ।
मुनि् प्रसन्नमानसश्चरेन्महीतलेसुखी ॥१५१ ॥

भाषा—विगत हुआ अविवेक अहङ्कार चित्त का उल्लास जिनके पुनः एषणात्रय रहित निर्म्मल बुद्धिवाला प्रसन्न चित्त इससे सुखी हुआ ब्रह्मनिष्ठ पुरुष पृथ्वीतल में विचरैं॥ १५१॥

क्वचित्तुसौख्यमश्नुतेक्वचिच्चतद्विपर्य्ययम् ।
क्वचित्तुसत्समागमंक्वचिच्चदुर्ज्जनागमम् ॥ १५२॥

भा०—कभी प्रारब्ध वश सुख को प्राप्त होता है कभी दुखः को प्राप्त होता है कभी सत्समागम को कभी दुर्ज्जन सङ्ग को प्राप्त होता है॥ १५२॥

क्वचिच्चतापसंसहतिङ्क्वचिच्चशीतसञ्चयम् ।
कदापिव्याघ्रतर्ज्जनङ्कदापिवैसुभोजनम् ॥ १५३ ॥

भा०—कभी शीतोष्णादिसे उत्पन्न हुआ दुःखराशि को प्राप्त होता है कभी शीत के ढेरी को कभी व्याघ्र समान दुष्ट स्वभाव वाले पुरुषों से भय को प्राप्त होता है कभी उत्तम भोजन को प्राप्त होता है॥ १५३॥

सदाप्रसन्नयाधियासुखेनयातिचाध्वके ।
नतप्यतेनमोदतेनयाचतेधनादिकम् ॥ १५४ ॥

भा०—सर्व्व समय में प्रसन्न बुद्धि से सुख से मार्ग्ग विषे चलता है नतो किसी वस्तु के नष्ट हुये तापवान् होता है न किसी वस्तु के प्राप्त हुये हर्षवान् होता है नतो किसी से धनादि की याचना करता है॥ १५४॥

श्रोतव्यश्चसदात्माहिमन्तव्यश्चमुमुक्षुभिः ।

तम्म वासततन्ध्यायेदेतद्दर्शनकारणम् ॥ १५५ ॥

भा०—मुमुक्षुपुरुषों करके । सर्व्वकाल में आत्मा श्रवण करने योग्य है पुनः मनन करने योग्य है उस आत्मा का सम्यक् प्रकार श्रुति युक्ति से मनन करके निरन्तर ध्यान करने योग्य है यही आत्मा के दर्शन का कारण है "आत्मावा द्रष्टव्य श्श्रोतव्योमन्तव्योनिदिध्यासितव्यश्च ॥ १५५ ॥

एकेनश्रवणेनैवनात्मालभ्यँ कदाचन ॥

मननाच्चनिदिध्यासाद्दते दुर्ज्ञेयतास्ययत् ॥ १५६ ॥

भा०—केवल एक श्रवण करने से यह आत्मा कभी नहीं प्राप्त होता है मनननिदिध्यासन के विना जिससे आत्मा अत्यन्त दुर्ज्ञेय है इससे वारम्वार श्रवण मनननिदिध्यासन से यह आत्मा प्राप्त होता है शारीरिक सूत्र में ऐसा लिखा है सूत्रञ्चैतत् "आवृत्तिरसकृदुपदेशात्" सूत्रार्थ श्रवणादिका वारम्वार आवृत्ति करना चाहिये इस श्रुति के उपदेश से ॥ १५६ ॥

आत्मानपठनैर्ल्लभ्योमेधयावाश्रुतेनवा ।

अहम्ब्रह्मास्मिचैतेनध्यानेनब्रह्मदर्शनम् ॥ १५७ ॥

भा०—वेदादि पढ़ने से आत्मा प्राप्त होने योग्य नहीं है शास्त्रों के अर्थ का धारण करने वाली बुद्धि से तथा अधिक पण्डित्य से भी आत्मा प्राप्त नहीं होता है । मैं ब्रह्म हूँ इस ध्यान से ब्रह्म का दर्शन होता है "नाथमात्मा प्रवचनैन" ॥ १५७ ॥

आचार्य्यादिष्टवाक्यार्थचिन्तनंश्रवणम्मतम् ।

युक्तयासम्यक्छ्रुतार्थानुसन्धानम्मननम्वरम् । १५८

भा०—श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ट आचार्य्य से उपदिष्ट जो तत्वमस्यादि महावाक्य इनके अर्थ का चिन्तन इसको श्रवण कहते हैं युक्ति पूर्व्वक सम्यक् प्रकार से सुनेहुये अर्थ का चिन्तन यही श्रेष्ठ मनन है॥ १५८॥

श्रवणान्मननाच्चैवनिश्चितेऽर्थेहिचेतसः॥
एकाग्र्यम्विशदन्तत्तुनिदिध्यासनमुच्यते॥ १५९॥

भा०—श्रवण और मननद्वारा निश्चय करके जीव ब्रह्म की एकता रूप अर्थ विषेचित्त का जोउत्तम एकाग्रता अर्थात् निरन्तर स्थिति इसको निदिध्यासन कहते हैं॥ १५९॥

ध्यातृध्यानपरित्यागेध्येयरूपेऽव्यवस्थितिः॥
समाधिश्चायमेवोक्तस्सर्व्वतापनिवर्त्तकः॥ १६०॥

भा०—ध्याता ध्यान के परित्याग हुये ध्येयमात्र विषेचित्त की जो तद्रूपता से स्थिति होना यही समाधि कही है सर्व्वताप के निवृत्तक करने वाली है॥ १६०॥

सर्व्वार्थविमुखञ्चित्तम्ब्रह्मानन्दैकगोचरम्॥
शरद्वारिसमंस्वच्छंसमाधिरभिधीयते॥ १६१॥

भा०—समाधि का द्वितीय लक्षण शब्दादि विषयों से चित्त का विमुख होना केवल ब्रह्मानन्द विषेनिमग्न होना शरत् काल विषे- जलवत् चित्त का निर्म्मल होना इसको समाधि कहते हैं॥ १६१॥

मनसोनिर्व्विकल्पस्यब्रह्माकारतयास्थितिः॥

वसिष्ठेनाप्ययम्प्रोक्तोह्यसम्प्रज्ञातसंज्ञकः ॥ १६२ ॥

भा०—सङ्कल्प विकल्प रहित की ब्रह्माकार से स्थिति होनी यही वसिष्ठ महर्षि करके असम्प्रज्ञात नाम वाला समाधि कही हुई है ॥ १६२ ॥

समाधौवर्त्ततेयावत्ताबद्वैतन्नपश्यति ॥
समाधेरुत्थितश्शान्तोविश्वम्पश्यतिचिन्मयम् ॥

भा०—जबतक ब्रह्मनिष्ठ पुरुष असम्प्रज्ञात समाधि विषे स्थित रहता है। तबतक द्वैत भ्रम को नहीं देखता है पुनः समाधि से उत्थान होने पर भीशान्त हुआ सर्व्व जगत् को ब्रह्ममय देखता है इससे तुरियस्थित पुरुष का कदापि उत्थान नहीं होता है किन्तु सदा समाधि है तथा च पातञ्जल सूत्रम "तस्य प्रशान्त वाहिता संस्कारात्" सूत्रार्थः उस पुरुष के उत्थान में शान्त अवस्था रहती है निर्व्विकल्प समाधि के संस्कार से ॥ १६३ ॥

तत्त्वात्मबोधएवैकस्सर्व्वाशातृणपावकः ॥
प्रोक्तस्समाधिशब्देननतुतूष्णीमवस्थितिः ॥ १६४

भा०—वसिष्ठ जी के कथनानुकूल पुनः समाधि का स्वरूप कहते हैं। एक तत्वज्ञानमात्र ही सम्पूर्ण तृष्णा रूप तृण के भस्म करने को अग्निरूप है तूष्णीं भाव से स्थित होनी समाधि नहीं है किन्तु आत्मज्ञान विषे स्थिति होना ही समाधि है इसी अर्थ को अगिले वाक्य से दृढ़ करते हैं ॥ १६४ ॥

तूष्णीम्भावस्थितिश्चेत्स्यात्समाधिर्निर्व्विकल्पकः
पादपाश्मकवल्लीनांसमाधिस्तुकथन्नहि ॥ १६५ ॥

भा०—यदि तूष्णी भाव से स्थिति होना ही समाधि है तब वृक्ष पाषाण लतादि की समाधि में स्थिति क्यों नहीं इससे वासना क्षय पूर्वक स्वस्वरूप साक्षात्कार ही समाधि है॥ १६५॥

क्षीयन्तेचास्यकर्म्माणिश्रुत्याप्रारब्धकर्म्मणः।
विनष्टिःश्रूयतेऽस्माभिस्तत्वज्ञानोदयेसति॥ १६६॥

भा०—क्षीयन्तेचास्यकर्म्माणितस्मिन्दृष्टे परावरे" इस श्रुति प्रारब्ध कर्म्मका भी तत्वज्ञान उदय हुये विनाश सुना जाता है॥ १६६॥

आत्मज्ञानोदयादूर्द्ध्वम्प्रारब्धन्नैववर्त्तते।
शरीरादेरवस्तुत्वात्प्रारब्धाऽवस्थितिँकुतः॥१६७॥

भा०—आत्मज्ञान के उदय होने से उपरि प्रारब्ध कर्म्म का भोग नहीं होता है शरीरादि के अनित्य होने से प्रारब्ध कर्म्म की स्थिति कैसे होवे॥ १६७॥

पूर्वत्रजनन्नेकर्म्मकृतम्प्रारब्धसंज्ञकम्।
अद्वयस्यात्मतत्वस्यजन्मादिनैवदृश्यते॥ १६८॥

भा०—पूर्व्व जन्म विषे किया हुआ कर्म्म प्रारब्ध संज्ञक है जिससे यह आत्म तत्व अद्वय है इसीसे जन्म मरणादि नहीं देखते हैं॥ १६८॥

जन्मादीनामवस्तुत्वात्कुतँप्रारब्धसम्भवः।
अज्ञस्यैवसुबोधार्थम्प्रारब्धंश्रुतिवर्णितम्॥ १६९॥

भा०— जन्मादि के अवास्तविक होने से प्रारब्ध कर्म्म का सम्भव कैसे हो सकता हैं अज्ञ पुरुष के मुख से आत्मस्वरूप का ज्ञानार्थ प्रारब्ध कर्म्म श्रुतियों से कहा हुआ है॥ १६९ ॥

अस्यमिथ्याप्रपञ्चस्याऽज्ञानंहिकारणंस्मृतम् ।

ज्ञानेनाज्ञानकेनष्टेकुतः प्रारब्धसम्भवः ॥ १७० ॥

भा०—पुनः युक्ति पूर्व्वक ज्ञानवान् विषे प्रारब्ध कर्म्म के सम्बन्ध का अभाव देखाते हैं इस मिथ्या रूप जगत् प्रपञ्च का केवल अज्ञान ही कारण कहा है स्वस्वरूप ज्ञान करके अज्ञान के नष्ट हुये प्रारब्ध कर्म्म कैसे सम्भव हो सकता है क्योंकि जन्ममरण कर्म्मादि यह सर्व्व अविद्या कल्पित है। अविद्या के नाश हुये उसका कार्य्य कर्म्मादि कैसे सम्भव हो सक्ता है ॥ १७० ॥

प्रत्याख्यातंशंकरेणाद्वैतबोधसुप्रौढये ।

व्यवहारदशायान्तुप्रत्याख्यातन्नसम्भवेत् ॥ १७१ ॥

भा०—शङ्कराचार्य्यने अद्वैत ज्ञान के सुदृढ़ के अर्थ प्रारब्ध कर्म्मका खण्डन किया है पर व्यवहार दशा में तिसका खण्डन सम्भवतः नहीं है आशय यह है जब तक अपने विषे देह कर्म्म आदि का अभाव नहीं देखता है तब तक आत्मज्ञान दृष्टि होता नहीं है एतदर्थशङ्कर भगवान् ब्रह्मज्ञ पुरुषविषेप्रारब्धादि कर्म्म का अभाव दिखाये हैं सर्व्वथा खण्डन नहीं किया है ॥ १७१ ॥

यदिनास्यभवेद्भोगः पुँसाम्ब्रह्मविदामिह ।

तस्यतावदेवेत्यादिवाक्यजालस्यकागतिः ॥१७२ ॥

भा०—यदि इस लोक विषे ब्रह्मज्ञ पुरुषों को प्रारब्ध कर्म्म का भोग नहीं होता है तब "तस्यतावदेवचिरंयावन्नविमोक्षयेऽथसम्पत्से" इस श्रुति वाक्यकी सङ्गति कैसे होती है श्रुत्यर्थः तिस ब्रह्मज्ञको तब तक चिरकाल है प्रारब्ध कर्म्म से नहीं छूटता प्रारब्ध कर्म्म के क्षय हुये विदेह कैवल्य को प्राप्त होता है इससे ब्रह्मनिष्ठ पुरुषों को भी प्रारब्ध कर्म्म का भोग होना आवश्यक है।। १७२।।

त्रिविधङ्कर्म्मशास्त्रेऽस्मिञ्छास्त्रकारैर्निरूपितम्।
सञ्चितञ्चैवप्रारब्धंक्रियमाणन्तृतीयकम्।।१७३।।

भा०—इस शास्त्र में शास्त्रकारों करके तीन प्रकार का कर्म्म कहा हुआ है सञ्चित, प्रारब्ध, क्रियमाण।। ७३।।

शुभाऽशुभानन्तकोटिजन्मादिकफलप्रदम्।
सञ्चितञ्चेतितञ्ज्ञेयंज्ञानाग्निदाह्यमेवतत्।।१७४।।

भा०—शुभाऽशुभ संज्ञक अनन्त जन्मादि देने वाला वह सञ्चित कर्म्म जानने योग्य है ज्ञानरूप अग्नि से दाह करने योग्य है।। १७४।।

पूर्व्वदेहार्ज्जितंयच्चदेहारम्भकमत्रयत्।
प्रारब्धमितिसम्प्रोक्तम्भोगादेवविनश्यति।।१७५।।

भा०—पूर्व्व जन्म विषे अर्जित और इस लोक विषे वर्त्तमान देह का उत्पन्न करने वाला जो कर्म्म उसको प्रारब्ध कहते हैं वह भोगने से नष्ट होता है।। १७५।।

इष्टम्वायदिवाऽनिष्टङ्कि यतेकर्म्मचेन्द्रियैः ॥
क्रियमाणन्तदेवस्यात्संसर्गोनास्यबोधिनाम् ॥ १७६

भा०—पुनः इन्द्रियों से इष्ट अथवा अनिष्ट कर्म्म किये जाते हैं वही क्रियमाण कर्म्म है इसका ज्ञानवान् पुरुषोंविषे सम्बन्ध नहीं है श्रुति " तद्यथापुष्कर पलाश आपोनाश्लेष्यन्तएवमेवंविद्विहितकर्म्मापिनश्लिष्यते " श्रुत्यर्थः जैसे कमल पत्रविषे जल स्पर्श नहीं करता है ऐसे ही ब्रह्म निष्ठविषे शुभाशुभ कर्म्म नहीं स्पर्श करता है ॥ १७६ ॥

यथातोयम्परित्यज्यकाञ्चम्वैगृह्यतेजनैः ।
तथातत्वम्परित्यज्यविश्वं गृह्णातिवैभ्रमात् ॥ १७७

भा०—जैसे विज्ञ पुरुष जल का भ्रम से त्याग करके काञ्चका ग्रहण करते हैं तैसे आत्मतत्व को त्याग करके अज्ञ पुरुष जगत् का ग्रहण करता है ॥ १७७ ॥

तोयरूपेचसंज्ञातेयथाकाञ्चन्निवर्त्तते ।
तथातत्त्वेतुसंज्ञातेजगत्सर्व्वम्विलीयते ॥ १७८ ॥

भा०—जैसे जल के ज्ञान हुये काञ्च भ्रम निवृत्त हो जाता है तैसे स्वस्वरूप के ज्ञान हुये सर्व्व जगत् लीन हो जाता है ॥ १७८ ॥

अविवेकदशायांय्यज्जगद्रूपेणभातिहि ।
सदैवज्ञानरूपेणविश्वम्भातिविवेकतः ॥ १७९ ॥

भा०—अज्ञान दशा मे जगत् रूप से भासता है सोई जगत् विवेक दशा में ब्रह्म रूप से भासता है ॥ १७९ ॥

मिथ्याभूतोहि संसारोजन्मादिबहुदोषभाक् ।
अज्ञानान्नित्यवद्भातिविवेकादाशुनश्यति ॥ १८०

भा०—जन्मादि अनेक दोष संयुक्तसंसार मिथ्यारूप है अज्ञान से सत्य भाषता है ज्ञान से शीघ्र नाश हो जाता है ॥१८०॥

ऋतन्तावदिदम्भातियावन्नज्ञायते परम् ॥
परेतत्वेचसंज्ञाते स्वप्नवद्भात्यपार्थकम् ॥ १८१ ॥

भा०— जब तक परमात्मा का ज्ञान नहीं होता है तब तक जगत् सत्य भासता है परतत्व के ज्ञान हुये जगत् स्वप्नवत् भासता है ॥ १८१ ॥

अव्ययंयश्चजानातिसर्व्वव्यापिनमीश्वरम् ।
सविविक्तमतिर्ल्लोके न घातयतिहन्तिवा ॥ १८२ ॥

भा०—जो पुरुष सर्व्वव्यापक जन्म मरणादि रहित ईश्वर को जानता है शुद्ध बुद्धि वाला इस लोक विषे किसको मरवाता है किसको मारता है तथा श्रुतिः ॥ नायंहन्तिनहन्यते ॥ १८२ ॥

आत्मानम्वेत्तिहन्तारं हतम्वामन्यते तुयः ।
सआत्मानन्नजानातिज्ञेयस्सपुरुषं पशुः ॥ १८३ ॥

भा०—जो आत्मा को मारने वाला जानता है अथवा आत्मा को किसी करके हत मानता है वह आत्माओं को नहीं जानता है वह पुरुष पशु जानने योग्य है ॥ १८३ ॥

आत्मानच्छिद्यते शस्त्रैर्दह्यते नापिवह्निना ।

क्लिद्यते नचतोयैर्हिशोष्यते नचवायुभिः ॥ १८४ ॥

भा०—आत्मा को खड्गादि शस्त्रों ने काट नहीं सक्ते पुनः अग्नि उस आत्मा को जला नहीं सक्ता है पुनः जल आत्मा को आर्द्र नहीं कर सक्ता है पुनः उस आत्मा को वायु शोष भी नहीं सक्ता है ॥ १८४ ॥

सर्व्वगस्सचिदानन्दस्वरूपस्स बंबुद्धद्दक् ॥
दृश्यते ज्ञानयोगेन परमात्मासनातनः ॥ १८५ ॥

भा०—सर्व्वगत सच्चिदानन्द स्वरूप सर्व प्राणियों के बुद्धि का द्रष्टा सनातन परमात्मा ज्ञान योग से देखा जाता है ॥१८५॥

अचिन्त्यरूपमव्यक्तमक्षरम्प्रकृते परम् ॥
विकाररहितं शान्तं ज्ञात्वाधीरोनशोचति ॥ १८६ ॥

भा०—अचिन्त्यरूप और अव्यक्तही परम सूक्ष्म है नाश रहित प्रकृति से परे जन्म मरणादि विकार रहित शान्त स्वरूप जो आत्मा उसको धीर पुरुष जानकर शोच नहीं करता है श्रुतिः "तत्रको मोहः कश्शोक एकत्व मनु पश्यतः" ॥ श्रुत्यर्थः उस अभेद दर्शी पुरुषविषे मोह शोक क्या है अर्थात् नहीं होता है ॥ १८६ ॥

असूर्य्यानामलोकाहिमहतातमसावृताः ॥
तांस्ते सर्व्वेऽभिगच्छन्तिजनायेह्यात्मघातकाः ॥ १८७

भा०—नहीं है सूर्य्यवत् प्रकाशक ज्ञान जिनमें ऐसे जो लोक कहीं शरीर है पशु पक्षी आदिक घोरतम गुण से आच्छादित

उन शरीर को आत्मज्ञान रहित जो पुरुष वह सम्पूर्ण योग प्राप्त होते हैं ॥ १८७ ॥

एषणात्रयमुक्तायेनिरहङ्कारिणस्तथा ।
अव्ययन्तत्पदंय्यातिविशुद्धं श्रुतिवर्णितम् ॥ १८८

भा०—जो पुरुष पुत्र धन लोक की इच्छा से रहित है और निहङ्कार है वह अव्यय ब्रह्म पद को प्राप्त होता है जो ब्रह्मपद शुद्ध सर्व्व वेदों से वर्णित है तथाश्रुतिः "सर्व्वेवेदायत्पदमा मनन्ति" ॥ १८८ ॥

शब्दादिविषयेभ्यश्चविरक्तानिश्चलाधिया ।
प्रज्ञासैवसमाधिस्थावेत्यानन्दमनल्पकम् ॥ १८९ ॥

भा०—शब्दादि विषयों से विरक्त और जो निश्चला बुद्धि सोई समाधिस्थ है वही परमानन्द का अनुभव करती है ॥ १८९ ॥

तयायुक्तजनोधीरस्सर्वान्कामान्विहायवै ।
आत्मन्येवात्मनाऽजस्रं हृष्यत्येवमहामुनिः ॥ १९०

भा०—उस समाधिस्थप्रज्ञा से युक्त धीर पुरुष सर्व्व विषयों को छोड़कर अपने स्वरूप विषे शुद्ध चित्त करके निरन्तर प्रसन्न होता है ॥ १९० ॥

आनन्दाब्धिविलीनोयस्सौख्यादिविगतस्पृहः ।
सयोगीदुःखसंघेननकदाचिद्विचाल्यते ॥ १९१

भा०—जो योग निष्ठपुरुष ब्रह्मानन्द समुद्र विषे निमग्न

और विषय सुख के इच्छा से रहित है वह दुःखराशि से कदाचित् चलाय मान नहीं होता है ॥ १६१ ॥

योगीसमाधिकालेतुनशृणोतिनपश्यति ।
अतीन्द्रियम्परंसौख्यज्ञानात्येवसदाचसः ॥ १६२

भा०—आत्म योगनिष्ठ पुरुष असम्प्रज्ञातसमाधि में लौकिकशब्दोंको नहीं सुनता है और व्यवहारिक पदार्थों को भी नहीं देखता है सर्व इन्द्रियों का अविषय जो उत्कृष्ट ब्रह्म सुख है उसका अनुभव निरन्तर करता है ॥ १६२ ॥

आत्माख्याह्रदनीरम्यातोयसंयमपूरिता ।
ऋतावर्त्तान्विताशीलतटासैवदयोर्मिका ॥ १६३

भा०—आत्मानामकरमणीय नदी है संयम कहीं चित्त निरोध रूप जल से पूरित है सत्य भाषण रूप भंवरी वाला है जिसमें वही दया रूप तरंग वाली है ॥ १६३ ॥

हंसास्सन्यासिनस्तत्रनिमज्जन्तियथासुखम् ।
इतरेकाकरूपाहिनव्रजन्तितदन्तिके ॥ १६४ ॥

भा०—तिस नदी विषेहंसरूप परमहंस जन सुख पूर्वक मज्जन करते हैं इतर काकरूप विषयी पुरुष उस नदी के समीप नहीं जाते हैं ॥ १६४ ॥

निर्म्मानित्वमदम्भताचसमताहिंसातथाचार्य्यवस्स्थैर्य्यंस्वात्मविनिग्रहश्चविषये वैराग्यसंधारणम् । जन्मापायजराधिव्याधिशमनोयोगस्तथा

चोत्तमोयेनैतानिचसेवितानिसततम्प्रोक्तस्सवैयो गयुक् ॥ १६५ ॥

भा०—अब यहां आत्म निष्ठ पुरुष के लक्षण को कहते हैं,, प्रतिष्ठा की इच्छा का त्याग और पाखण्ड रहित समता अहिंसा तैसे क्रूर भावका त्याग पुनः आत्मस्वरूप विषे दृढ़ स्थिति शब्दादि विषयों से बुद्धि को हटाना ऐहिक पारलौकिक विषयों में वैराग्य का धारण जन्म मरण वृद्धपना मानसी व्यथा और ज्वर रोगादि का निवृत्त करने वाला उत्तम आत्म चिन्तनयोग जिन करके निरन्तर सेवित है वहीं पुरुष निश्चय करके योग युक् जानने योग्य है ॥ १६५ ॥

इच्छाद्वेषोसुखदुःखंधृतिश्चेतनयाऽन्विता ।
साहङ्कारातथाप्रज्ञामूलप्रकृतिरेवच ॥ १६६ ॥

भा०—इच्छा द्वेष सुख दुख चेतना सहित धृति तैसे अहङ्कार युक्त बुद्धि पुनः मूलप्रकृति ॥ १६६ ॥

महाभूतानिपञ्चैवहृषीकाणितथादश ।
शब्दादि विषयाः पञ्चसंघातोमानसश्चवै ॥ १६७ ॥

भा०—पुनः पञ्च महाभूत तैसे श्रोत्रादिक दश इन्द्रियें और शब्दादि पञ्चविषय और गुण समुदाय ॥ १६७ ॥

एतद्युक्तम्प्रतीकञ्चज्ञानेनयस्तुपश्यति ।
श्रुतिभिस्सचवैप्रोक्तंपरंपुरुषएवच ॥ १६८ ॥

भा०—जो इनपूर्वोक्तइच्छा द्वेषादि विकारों सहित शरीर

का ज्ञान शक्ति से यथावत् देखा जाता है सोई सर्व्व श्रुतियों से पर पुरुष कहा हुआ है ॥ १६८ ॥

विकाराश्चगुणाश्चैवयतोजातास्सनातनाः ।
प्रकृतिस्सापराज्ञेयायथेदम्मोहितञ्जगत् ॥ १६९ ॥

भा०—यह तत्वादि प्रकृति के विकार तथा सत्वादिक गुण त्रययह सनातन जिससे उत्पन्न है वही पर प्रकृति जानने योग्य है जिस करके यह सर्व्व जगत् मोहित है ॥ १६९ ॥

मृषाङ्गनायथास्वाप्नीरमयत्येवपूरुषम् ।
तथैवप्रकृतिर्म्मिथ्याजगदुत्पादनेक्षमा ॥ २०० ॥

भा०—जैसे मिथ्या भूत स्वप्न की स्त्री पुरुष को रमण करती तैसे यह 'मिथ्या भूत प्रकृति जगत् के उत्पन्न करने में समर्थ है ॥ २०० ॥

प्रतिबोधेयथास्वाप्नीनारीनैवप्रतीयते ।
तथेयंज्ञानसम्प्राप्ते प्रकृतिर्न्नैवदृश्यते ॥ २०१ ॥

भा०—जैसे जाग जाने पर स्वप्न की स्त्री नहीं प्रतीत होती है तैसे ज्ञान के प्राप्त हुये यह प्रकृति नहीं देखाती है ॥ २०१ ॥

यावद्वैनैवजानातिप्रकृतिन्दूषणान्विताम् ।
तावद्वैकर्म्मबन्धोऽयन्परस्यद्रष्टुरात्मनः ॥ २०२ ॥

भा०—जब तक उस प्रकृति को स्वरूपावरणादि दोष युक्त नहीं देखता है तब तक द्रष्टापर पुरुष को यह कर्म्म बन्ध है ॥ २०२ ॥

कार्य्यकारणकर्तृत्वेसैवहेतुःप्रकीर्त्तिता।
अज्ञानानात्तद्वशंयान्तिसर्व्वभूतानिचैवहि ॥२०३॥

भा०—इस जगत्‌रूप कार्य्यका और महत्तत्वादि तत्कारण को सो प्रकृति ही हेतु कही गयी है स्वस्वरूप के अज्ञान से उसके वश सर्व्वभूत होते हैं ॥ २०३ ॥

सङ्कल्पश्चविकल्पश्चकामानांयेनजायते।
मानसन्तत्समाख्यातमिन्द्रियाणामधीश्वरम् ॥२०४॥

भा०—जिसे संसारिक सर्व्व विषयों का सङ्कल्प विकल्प होता है सोई सर्व इन्द्रियों का ईश्वर मन कहा गया है ॥ २०४ ॥

तदेवद्विविधम्प्रोक्तम्भूयोह्याम्नायदर्शिभिः।
अशुद्धम्प्रथमम्बोध्यन्तद्वैशुद्धन्द्वितीयकम् ॥२०५॥

भा०—वह मन वेदज्ञ पुरुषों करके दो प्रकार का कहा गया है पहिला संसारात्मकचित्त अशुद्ध जानो दूसरा वैराग्यादि सम्पन्न को शुद्ध जानो ॥ २०५ ॥

अशुद्धङ्कामनाऽसक्तं शुद्धन्निष्कामनंस्मृतम्।
बन्धमोक्षकरन्तद्धिक्रमाद्बोध्यम्विपश्चिता ॥२०६॥

भा०—वही अगिले श्लोक में स्पष्ट करते हैं, मन क्रम से बन्धन मोक्ष करने वाला जानो अर्थात् विषयासक्त चित्तबन्ध करने वाला है ॥ २०६ ॥

मनोग्राह्यं सुखन्दुःखमिच्छाद्वेषोमतिर्कृतिः।

ज्ञानंयन्निर्विकल्पाख्यन्तदतीन्द्रियमिष्यते ॥२०७॥

भा०—सुखदुःख इच्छा द्वेष मनन करण यह मनोमात्रग्राह्य हैं। निर्विकल्प ज्ञान है सो सर्व्व इन्द्रिय का अविषय कहाता है। श्रुतिः "यतोवाचोनिवर्त्तन्ते अप्राप्यमनसासह ॥ २०७ ॥

संशयोऽथस्मृतिश्चैवनिश्चयोऽथविपर्य्ययः

एतेहिचेतनाधर्म्माज्ञातव्यावैमुमुक्षुणा ॥ २०८ ॥

भा०—संशय कहीं एक पदार्थ विषे नाना प्रकार का कल्पना जैसे स्थाणुर्वा पुरुष और स्मृति कहीं पूर्व्व अनुभूत पदार्थ का स्मरण जैसे सोई देवदत्त है जिनको मैं काशी में देखा था पुनः वस्तुका यथार्थ ज्ञान यही निश्चय है विपर्य्यय मिथ्याज्ञान बुद्धि धर्म्म मुमुक्षु करके जानने योग्य है ॥ २०८ ॥

चिन्तनंयेनवस्तूनान्तद्धिचित्तमुदाहृतम् ।

करोमीतिवृथामानोह्यहङ्कारः प्रकीर्त्तितः ॥ २०९ ॥

भा०—जिससे सर्व्व वस्तुओं का चिन्तन होता है वही चित्त कहाता है मैं इस कर्म्म को करता हूँ इस वृथामान को अहङ्कार कहते हैं ॥ २०९ ॥

एताःसर्व्वाःपरित्यज्यचैतन्यम्वैसमाश्रयेत् ।

तदाश्रयेणचैतानिवर्त्तमानानिकर्म्मसु ॥ २१० ॥

भा०—इन पूर्वोक्त अन्तःकरणादि रूप उपाधियो का त्याग करके चैतन्य मात्र का मुमुक्षु पुरुष सम्यक् प्रकार से आश्रय करैं उस चेतन के आश्रय से यह सर्व्व जगत् अपने अपने कर्म्मों में वर्त्तमान है ॥ २१० ॥

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिम्पश्चावस्थाभ्योविलक्षणम् ।
आत्मानंसाक्षिणम्बिद्धितुरीयंशिवसंज्ञकम् ॥ २११ ॥

भा०—जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति अवस्था से विलक्षण तुरीय संज्ञक साक्षी को आत्मा जानो ॥ २११ ॥

जाग्रत्साक्षीविभुर्व्विश्वस्स्वप्नसाक्षीचतैजसः
प्राज्ञसंज्ञस्तथाचात्मासुषुप्त्याहिप्रभुर्म्मतः ॥२१२॥

भा०—जाग्रत् का साक्षी विश्वनामकविभु है पुनः स्वप्ना वस्थाका साक्षी तैंजसनाम वाला है तैंसे सुषुप्ति अवस्था का साक्षी प्राज्ञ नाम वाला है ॥ २१२ ॥

चिद्घनानन्दरूपोयस्सतुरीयनिरूपितः ।
वृत्तिक्षयेतुतत्रैवरमन्तेमुनयस्सदा ॥ २१३ ॥

भा०—जो ज्ञान घन आनन्दस्वरूप आत्मा है वही तुरीय कहा है " शिवंचतुर्थम्मन्यन्ते इतिश्रुते " उस परमात्माविषे अविद्या बृत्ति के क्षय हुये मुनि जन रमण करते हैं ॥ २१३ ॥

वैश्वानरस्यविश्वेनसाम्यतावैप्रकीर्त्तिता ।
आत्मनस्तैजसाख्यस्यहिरण्योदरकेणच ॥ २१४ ॥

भा०—वैंश्वानर की विश्वात्मा के साथ समता कही हुयी पुनः तैंज सनामक आत्मा का हिरण्यगर्भ के साथ समता कही हुई है ॥ २१४ ॥

अव्याकृतस्यबीजस्यप्राज्ञस्यैवतुसाक्षिणः ।

अभेदोवर्णितश्शास्त्रेशास्त्रकारैस्सदानयोः ॥ २१५

भा०—पुनः सर्व्वकारण अव्याकृत आत्मा के सुषुप्तिका साक्षी प्राज्ञका अभेद शास्त्र विषे शास्त्रकारों करके निरूपित है ॥ २१५ ॥

कार्य्यकारणसम्बद्धौबोध्यौचविश्वतैजसौ ।
कारणेनैवसम्बद्धः प्राज्ञस्तुर्य्येतुतेनहि ॥ २१६ ॥

भा०—विश्वतैजस यह दोनों कार्य्य और कारण करके सम्यक् प्रकार से वद्ध है और प्राज्ञ कारण से बांधा हुआ है और तुरीय विषे कार्य्य कारण दोनों नहीं है ॥ २१६ ॥

अन्यथाग्रहणङ्कार्य्यन्तत्वाज्ञानन्तुकारणम् ।
कार्य्यकारणसंनष्टे तुरीयम्पदमश्नुते ॥ २१७ ॥

भा०—स्वस्वरूप का यथावत् ज्ञान कार्य कहाता है और तत्व का जो अज्ञान वही कारण है कार्य्य कारण के सम्यक् नष्ट हुये तुरीय पदकों प्राप्त होता है ॥ २१७ ॥

तुर्य्यवत्प्राज्ञरूपेचद्वैताभावोहिदृश्यते ।
बीजनिद्रान्वितः प्राज्ञास्साचतुर्य्ये नविद्यते ॥ २१८ ॥

भा०—जैसे तुरीय विषे द्वैत का अभाव देखा जाता है ऐसे ही प्राज्ञरूप विषे भी द्वैत नहीं देखाता है परन्तु इन दोनों में इतना ही भेद है कि प्राज्ञस्वस्वरूपा ज्ञान लक्षण मूल विद्या से युक्त है और तुरीय में मूल विद्या नहीं है ॥ २१८ ॥

नपरञ्चापिचात्मानन्नानृतंसत्यमेववा ।
प्राज्ञः किञ्चनजानातितुर्य्यम्पश्यतिसर्व्वदा ॥ २१९ ॥

भा०—अब यहां प्राज्ञविषे मूलाविद्या देखाते हैं जगतको न अपने को न असत्य को न सत्य को प्राज्ञ कुछ जानता है और तुरीय निरन्तर सर्व पदार्थों को जानता है ।। २१६ ।।

वाह्यप्रज्ञोविभुर्विश्वोह्यन्तःप्रज्ञस्तुतैजसः ।
लीनप्रज्ञस्तथाप्राज्ञएकएवत्रिधामतः ।। २२० ।।

भा०—विश्वआत्मावाह्य विषयक बुद्धि वाला है पुनः तैजस अन्तर विषयक बुद्धि वाला है तैसे घृतवत् घन बुद्धि युक्त प्राज्ञ है एक ही साक्षी अवस्था के भेद से तीन प्रकार का कहा हुआ है ।। २२० ।।

जागरेविश्वनामात्मा विषयान्यातिचेन्द्रियैः ।
स्वप्नेसएवसूक्ष्मान्वैभुङ्क्तेचेन्द्रियवृत्तिभिः ।। २२१ ।।

भा०—जाग्रत काल में विश्वनाम वाला साक्षी श्रोत्रादिक इन्द्रियों से शब्दादि विषयों का ज्ञान करता है वही स्वप्न विषे सूक्ष्म इन्द्रियों से सूक्ष्मविषयों का भोग करता है ।। २२१ ।।

सुषुप्तौहृदयाकाशेप्राज्ञाख्योऽज्ञानसम्वृतः ।
जानातिचतदानन्दंज्ञानदृष्ट्यास्वयाविभुः ।। २२२ ।।

भा०—सुषुप्ति में हृदयाकाशविषे अज्ञान से आच्छादित प्राज्ञ नामक आत्मा उस क्षण में आनन्द का अनुभव करता है अपने ज्ञानदृष्टि से श्रुतिः "आनन्दभुक् चेतोमुखः आनन्द भोगने वाला है चेतन पुरुष ।। २२२ ।।

त्रिषुधामसुयद्भोग्यम्भोक्तायश्चप्रकीर्त्तितः ।
तदेतदुभयंयस्तुभुञ्जानोनविलिप्यते ।। २२३ ।।

भा०—तीनों स्थानों में जो भोग्य विषय है और उनका भोगने वाला जो विश्वादिक साक्षी इन दोनों का जो जानने वाला परमात्मा वह सर्व भोगों को भोगता हुआ भी किसी में आकाशवत् लिप्यमान नहीं होता है॥ २२३॥

स्थानभेदात्प्रतीयन्तेह्यात्मधर्म्माः पृथक्पृथक्।
यथाऽत्रद्विभुजोमर्त्यः स्वर्ल्लोकेऽसौचतुर्भुजः॥ २२४॥

भा०—जाग्रत आदि स्थानों के भेद से तत्तत्स्थानों के धर्म्म कहीं ज्ञानादि भिन्न २ देखाता है जैसे यहां दो बाहु वाला पुण्यात्मा पुरुष शरीर त्यागे हुये स्वर्ग्ग विषे जाकर चतुर्भुज होता है तैसे ही जाग्रदादि स्थान के भेद से तत्तस्थानी विश्व तैजस प्राज्ञकी चेष्टा भिन्न २ भासती है इससे साक्षी के एकता की हानि नहीं॥ २२४॥

एवंशुद्धचिदात्माहिसौख्यरूपोऽद्वितीयकः।
जाग्रत्स्थानादिभेदेनदृश्यतेहिविलक्षणः॥ २२५॥

भा०—ऐसे ही शुद्ध चेतन आत्मा आनन्दस्वरूप अद्वितीय जाग्रदादि स्थान के भेद से विश्वादि संज्ञा वाला विलक्षण भासता है वस्तुतः विलक्षण नहीं है॥ २२५॥

ऐहिकन्द्विभुजत्वञ्चस्वर्ल्लोकेऽनेकवाहुताम्।
तिरस्कृत्यविवेकेनगृह्यतेपुरुषाकृतिः॥ २२६॥

भा०—अब यहां विश्वादिक का परस्पर में भेद देखाते हैं स्वर्गगामी पुरुष का ऐहिक धर्म्म द्विभुजत्व है और पारलौकिक जो धर्म्म अनेक वाहुत्वरूप तिसका विवेक से तिरस्कार करके विद्वान पुरुषकेवल पुरुषकार मात्र का ग्रहण करते हैं॥ २२६॥

यथातथाचसद्रूपंग्राह्यंयुक्तेनचेतसा।
अवस्थाकर्तृकान्धर्म्मान्निषिध्यनिखिलान्बुधैः ॥ २२७

भा०—जैसे तैसे श्रुतियुक्ति युक्त चित्त से अवस्था कर्तृक सर्व्व औपाधिक धर्म्मों का त्याग करके केवल सद्रूपमात्र ही ग्राह्य है विद्वान पुरुषों करके ॥ २२७ ॥

विद्वांसोबहवोऽप्यत्रवेदान्तार्थनिरूपकाः।
तन्निष्ठदुर्ल्लभालोकेदृश्यन्ते ब्रह्मवादिनः ॥ २२८ ॥

भा०—इस संसार विषे वेदान्त के अर्थ कानिरूपण करने वाला वहुत विद्वान हैं परन्तु आत्मनिष्ठ ब्रह्मवादी दुर्ल्लभ देखे जाते हैं ॥ २२८ ॥

कैवल्याशातुयस्यास्तिदेहेचैवतथात्मता।
नकैवल्यमवाप्नोतिसंसारञ्चाधिगच्छति ॥ २२९ ॥

भा०—जिस पुरुष को कैवल्य की इच्छा है तैसे देह विषे आत्म बुद्धि भी है वह पुरुष कैवल्य को प्राप्त नहीं होता है किन्तु संसार को प्राप्त होता है ॥ २२९ ॥

उपदेष्टाहरिर्व्वास्यात्साक्षाद्देवोमहेश्वरः।
तथापिनैवशान्तिर्हिविनास्वात्मविचारणात् ॥ २३० ॥

भा०—यदि हरि उपदेष्टा होवैं अथवा साक्षात् देव महेश्वर ही होवैं तथापि विना स्वरूप विचार के निर्व्वाण की प्राप्ति नहीं होती है ॥ २३० ॥

पठन्तुसर्व्वशास्त्राणिवेदानध्यापयन्तुवा।

आत्मतत्वविचारेण बनामोक्षोनसिध्यति ॥ २३१ ॥

भा०—सर्व शास्त्रों को पढ़ै अथवा वेदों को पढ़ावैं परन्तु आत्म स्वरूप विचार विना मोक्ष नहीं सिद्ध होता है ॥ २३१ ॥

वाक्चापल्यञ्चपाण्डित्यन्तथाव्यख्यानकौशलम् ।
भोगार्थन्नैवमोक्षार्थमितिवेदान्तनिश्चयः ॥ २३२ ॥

भा०—वाणी की चपलता तथा पांडित्य तैसे व्याख्यान में कुशलता यह भोगार्थ हैं मोक्ष प्राप्त्यर्थक नहीं हैं यही सर्व वेदान्त का निश्चय है ॥ २३२ ॥

असारे संसारे परज्ञप्तिरहितैकविभवोनिमग्ना-न्तेनित्यम्विषयसुखलाभाय पुरुषाः । विपश्यन्तो नित्यं धनस्वजनदारादिनिधनम् विरज्यन्ते नैव-न्त्वहहगहनोमोहमहिमा ॥ २३३ ॥

भा०—परमात्मज्ञान रहित एक विभव वाला असार संसार विषे शब्दादि विषय सुख के प्राप्त्यर्थ सांसारिक पुरुष निमग्न हो रहे हैं स्वजन धन स्त्री इत्यादि के विनाश को नित्य हीं देखते हुए भी वैराग्य को नहीं प्राप्त होते हैं बड़ा कष्ट है मोह महिमा अपार है ॥ २३३ ॥

गतम्बाल्यंसर्व्वंशिशुविषयलीलैकधिषणम् ।
तथातारुण्यञ्चतमपिहभार्य्यादिगमनैः ॥
नराणाञ्जीर्णत्वम्पशुद्रविणाचिन्तादि विकलम् ।

विरज्यन्तेनैवन्त्वहहगहनोमोहमहिमा ॥ २३४ ॥

भा०—बाल्य विषयक लीला में बुद्धि की स्थितिवालासर्व्व बाल्यवय व्यतीत हुआ तैंसे स्त्री आदि के साथ प्रसङ्गों से तारुण्य वयव्यतीत हुई तैंसे ही पुरुषों का वृद्धत्व व्यतीत हुआ द्रव्य पशु आदि चिन्ता विकल तथापि वैराग्य को नहीं प्राप्त होते हैं बड़ा कष्ट है मोह महिमा अपार है ॥ २३४ ॥

गृहेस्थितंय्यथानिधिम्विमुच्यमूढ़बुद्धयः।
मुधाभ्रमन्तिलब्धयेतथाभ्रमन्त्यहोजनाः ॥ २३५ ॥

भा०—जैंसे गृह में स्थित खजाने को त्यागकर द्रव्य लाभ के लिये मूढ़ बुद्धि मनुष्य अन्यत्र व्यर्थ घूमते हैं तसेही सांसारिक जन शरीररूप गृह विषै स्थित परमात्मरूप निधि को त्यागकर विषय प्राप्त्यर्थ व्यर्थप्रयत्न करते हैं ॥ २३६ ॥

शास्त्राणयधीत्ययेलोकेरमन्तेविषयेऽशुचौ।
दौर्भाग्यमाहिमातेषाम्वर्णनीयोनचापरः ॥ २३६ ॥

भा०—इस लोक विषै जो लोग शास्त्रों को पढ़ करके अशुद्ध शब्दादि विषय में रमण करते हैं उन लोगों का अभाग्य महिमा ही वक्तव्य है अपर कुछ नहीं ॥ २३७ ॥

आहारादिपशूनाम्वैमानवेनसमम्भवेत्।
धर्म्मज्ञानादराहित्यात्पशवस्तेप्रकीर्त्तिताः ॥२३७॥

भा०—पशुओं का आहारादि मनुष्य के समान ही होता है परन्तु धर्म्मज्ञानादिक रहित होने से वे पशु कहे गये हैं ॥ २३७ ॥

करस्थेतुयथादीपेविद्यमानेऽत्रवैपुमान्।

महाकूपेपतत्येवदौर्भाग्यङ्किन्तत् परम् ॥ २३८ ॥

भा०—जैसे यहां हाथ में दीपक रहने पर कोई पुरुष भारी कूप में गिर पड़ता है तिससे अधिक अभाग्य क्या कहना है ॥

येप्राप्यमानवंल्लोके स्वर्ग मोक्षादि साधनम् ।
भोगेषुपशुवत्सक्तास्तेसाक्षात्पशवस्स्मृताः ॥ २३९ ॥

भा०—जो लोग इस लोक विषे स्वर्ग मोक्षादिक का साधन मनुष्य शरीर को पाकर भोगों में पशुवत् आसक्त हैं वे साक्षात् पशु कहे गये हैं ॥ २३९ ॥

विद्याविहीनाँ पशवश्शङ्करेणनिरूपिताः ।
एवमज्ञानयुक्तानांपशुत्वंश्रुतिबोधितम् ॥ २४० ॥

भा०—ब्रह्म विद्याविहीन पुरुष शङ्कराचार्य्य करके पशु निरुपित है "विद्याविहीन ... पशु" इत्यादि वाक्यों करके इस प्रकार अज्ञान युक्त पुरुषों का पशुत्व श्रुतियों से वर्णित है तथा चश्रुतिः पशुरेवसदेवानामित्यादि ॥ २४० ॥

सुदुर्ल्लभमिदम्प्राप्ययतितव्यन्नृभिर्बुधैः ।
जननादिविमोक्षार्थमितिवेदान्तनिश्चयः ॥ २४१ ॥

भा०—इस अत्यन्त दुर्लभ मनुष्यत्व को पाकर विद्वान् पुरुषों के जन्म मरणादि महा दुखों से छुटने के अर्थ अवश्य ही यत्न कर्त्तव्य है यह सर्व्व वेदान्त का निश्चय है ॥ २४१ ॥

यदत्रग्रन्थसङ्ग्रहेनिरूपितम्मयाऽधुना ।
तदेवशास्त्रसम्मतिम्विचार्य्यनैवस्वोक्तितः ॥ २४३ ॥

भा०—इस ग्रन्थ संग्रह विषे जो मेरे करके वर्त्तमान काल में

निरूपित हैं सो वेदान्तादिशास्त्रों की सम्मति विचार करके कथित है केवल अपने उक्ति मात्र से नहीं ॥ २४२ ॥

अतोनदोषदृष्टितोविचार्य्यमेवसाधुभिः ।
सयुक्तिकम्वचस्तुयत्तदेवगृह्यतेपरैः ॥ २४३ ॥

भा०—इस हेतु से साधुजनों करके यह मेरा रचित दोष दृष्टि से नहीं विचारणीय है क्योंकि युक्ति सहित वचन श्रेष्ठ पुरुषों करके ग्रहण किया जाता है ॥ २४३ ॥

यदाभवेदयुक्तिकम्वचश्चपद्मजन्मनः ।
तदानमन्यतेवुधस्त्वश्रौतकम्विलोक्यतत् ॥ २४४ ॥

भा०—यदि ब्रह्मा का वचन युक्ति से रहित हो तब भी विद्वान पुरुष उसका ग्रहण नहीं करते तिसको अश्रौत देखकर क्योंकि श्रुति वाक्य युक्ति रहित माननीय है तथा चवशिष्ठ :—
श्लोक— सयुक्तकम्वचोग्राह्यम्बालादपिशुकादपि । निष्युंक्ति विचाकन्नैग्राह्यमप्युक्तम्पद्मजन्मना ॥ इति २४४ ॥

यदत्रग्रन्थनिर्म्मितौभ्रमादयुक्तमीरितम् ।
विर्य्यतद्धियास्वयासुशोध्यमेवसत्कृतम् ॥ २४५ ॥

भा०—इस ग्रन्थ के निर्माण विषे मेरे करके जो भ्रम से अयुक्त कथित है तिसको विद्वान पुरुष अपने बुद्धि से विचार करके शुद्ध कर लेवें ॥ २४५ ॥

कृपालुशास्त्रविद्वरैर्ज्जनोपकारशीलकैः ।
सुश्रौतयुक्तिनैपुणैरियंहि प्रार्थनामम ॥ २४६ ॥

भा०—जो कृपालु शास्त्रज्ञवरजनोपकार शील सम्पन्न तथा श्रौत युक्ति निपुण पुरुषों करके यह मेरा रचित सुशोध्य है ।। २४६ ।।

तत्वदीपाऽभिधोग्रन्थ कृतोऽयन्तत्वबोधकः ।
रामकृष्णेनविदुषामुमुक्षूणांसुखायच ।। २४७ ।।

भा०—तत्वदीप नामक ग्रन्थ परमात्मस्वरूप बोधक राम कृष्ण कवि करके रचित हुआ है मुमुक्षुजनों के स्वस्वरूपानन्द के प्राप्ति के अर्थ ।। २४७ ।।

तृप्तिङ्गच्छतुसर्ब्बेश परमात्मात्वनेनवै ।
तारयेत्समहामोहग्रस्तान्संसारसागरात् ।। २४८ ।।

भा०—इस ग्रन्थ निर्माण करके सर्ब्बेश्वर परमात्मा तृप्ति प्राप्त होवै वह परमात्मा अविद्या ग्रस्त पुरुषों को संसार सागर से उतारैं ।। २४८ ।।

शिवाक्षसप्तनन्दभूगतेनृपस्यवत्सरे ।
इषेऽसितेशुभेतिथौसुपूर्तितामगादयम् ।। २४९ ।।

भा०—श्रीमन्नृपति विक्रमीयसंव्वत्सर १९७३ आश्विन मास कृष्णपक्ष शुभ तिथि ११ में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ ।। २४९ ।।

श्रीमद्विद्वद्वरेन्द्रधर्म्ममूर्ति योगिराजेन्द्राधुनिककवि देहेन रामकृष्णेन विरचितोऽयन्तत्वदीपा भिधोग्रन्थस्समाप्तः ।

शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

दासानुदासः जगद्दीपः ।

पुस्तक मिलने का पता—

ब्रह्मर्षि श्रीरामकृष्ण योगीराज,

स्थान कोठिया ताल भीतर।

पो० मुहम्मदाबाद गोहना।

जिला आजमगढ़।